R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

अगस्त 2015

अंक 7

तपोभूमि

मासिक

श्री गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर में गुरुपूर्णिमा का पर्व सम्पन्न

गतवर्षों की भाँति इस वर्ष भी गुरुपूर्णिमा के पर्व पर 30 और 31 जुलाई को वेदमन्दिर मथुरा पर उत्साह सहित मनाया गया। ज्ञातव्य है यह पर्व प्राचीन समय से भारतवर्ष में व्यास पूर्णिमा के रूप में मनाया जाता है। प्राचीन समय में जब सर्वत्र गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्राबल्य था। राजनियम के तहत आठ वर्ष का बालक घर में नहीं रखा जा सकता था। उसको गुरुकुल में शिक्षार्थ भेजा जाता था। गुरुकुल का नवीन सत्र इसी गुरुपूर्णिमा से प्रारम्भ होता था। बच्चों को शिक्षा के लिए आचार्यों के पास ले जाकर शिक्षा सूत्र जिसे आज की भाषा में जनेऊ कहते हैं, वह दिया जाता था। इसका दूसरा नाम यज्ञोपवीत भी है। मनु महाराज ने लिखा है कि **"जन्मना जायते शूद्रः संस्करात् द्विज उच्यते"** अर्थात् जन्म से प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है, जब गुरुकुल में जाकर उसे विद्याध्ययन के द्वारा संस्कारित किया जाता है तब उसका दूसरा जन्म होता है। विद्या से दूसरा जन्म होने के कारण ही व्यक्ति द्विजन्मा अर्थात् द्विज कहलाता है। वैदिक संस्कृति संस्कार प्रधान संस्कृति है। वैदिक मनीषियों का मानना रहा है कि अच्छे व्यक्ति बनाये नहीं जाते पैदा किये जाते हैं। पैदा तब होगा जब उसके अन्दर संचित मानवीय संस्कारों को पवित्र वातावरण देकर उद्बुद्ध किया जाये। व्यक्ति का व्यक्तित्व नदी के समान है जो अपने उद्गम स्थान से लेकर आगे अनेकों झरनों, नालों के पानी को लेकर एक विशाल रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार मानव जीवन भी अनेक प्रकार के संस्कारों के प्रवाहों से मिलकर बनता है। हमारे समाज को चाहिये कि व्यक्तित्वों के निर्माण में कोई कुसंस्कारों का गन्दा नाला न पड़ने पाये। प्राचीन समय में बालक के माता-पिता और आचार्य इस बात का सदैव ध्यान रखते थे।

इसी प्रकार के उत्तम संस्कारों को डालने के लिये गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली सर्वोत्तम है। बालकों को आचार्यों के पास सौंपने का दिवस गुरु पूर्णिमा के पर्व के रूप में प्रसिद्ध हो गया। इसी दिन से गुरुकुल में शिक्षा का नवीन सत्र प्रारम्भ होता है। 31 जुलाई को वेदमन्दिर में भी इसी परम्परा का निर्वहन करते हुए गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रविष्ट हुए ब्रह्मचारियों का उपनयन संस्कार गुरुकुल के प्राचार्य आचार्य हरिप्रकाश के सानिध्य में बड़े ही सौम्य व उदात्त वातावरण में सम्पन्न हुआ। गुरुकुल में प्रविष्ट होने वाले 30 सौभाग्यशाली ब्रह्मचारियों को उपस्थित जनसमुदाय ने आशीर्वाद प्रदान किया। सभी ने आशा भरी कामनायें व्यक्त की और विश्वास जताया कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी संस्कारित होकर विद्वान

शेष पृष्ठ संख्या 35 पर-

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–61 संवत्सर 2072 अगस्त 2015 अंक 7

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अगस्त 2015

सृष्टि संवत्
1960853116

दयानन्दाब्दः 192

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेधाव्रत	5–8
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	9–12
ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई	–पं0 रामचन्द्र देहलवी	13–16
प्रेम विचित्र वस्तु है	–रामनरेश त्रिपाठी	17–18
पूजा–धर्म	–महात्मा हंसराज	19–21
विद्याध्ययन का प्रकार	–किशोरीलाल गुप्त	22–23
साधारण कार्य और कर्तव्य	–ठा0 कल्याणसिंह शेखावत	24–25
मन की गुप्त शक्ति !	–पं0 राजाराम प्रोफेसर	26–29
आत्म–शिक्षण	–श्यामबिहारी मिश्र	30–31
क्रोध पर विजय	–स्वामी सोमानन्द महाराज	32–34

***

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

वेदवाणी

डॉ० रामनाथ वेदालंकार

सौ हाथों से कमा, हजार हाथों से दान कर

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्य स्य चेह स्फातिं समावह।। –अथर्व0 3.24.5

शब्दार्थः–

(शतहस्त) हे सौ हाथों वाले, तू (समाहर) कमाकर ला। (सहस्रहस्त) हे सहस्र हाथों वाले, तू (संकिर) बखेर, दान कर। (कृतस्य) कमाये हुए धन की (कार्यस्य च) और कमाये जाने वाले धन की (इह) यहाँ (स्फातिम्) वृद्धि (समावह) सम्यक् प्रकार से कर।

भावार्थः–

एक मनुष्य के दो ही हाथ होते हैं, उन्हीं से वह कमा सकता है और उन्हीं से धन का दान कर सकता है। दो हाथोंवाले मानव को शत हाथोंवाला और सहस्र हाथोंवाला कहना आलंकारिक भाषा है। आशय यह है कि कोई सौ सहस्र हाथों से जितना संग्रह कर सके, उतना तू संग्रह कर और सहस्र हाथों से जितना दान कर सके उतना तू दान कर। धन अर्जित करने के लिए शारीरिक बल और मानसिक उत्साह की भी आवश्यकता होती है। 'शतहस्त समाहर' में ये सब बातें आ जाती हैं। पहले तू धन को अच्छी और उपादेय वस्तु समझ, फिर उसकी प्राप्ति का संकल्प कर, धन कमाने के साधन जुटा, उनका धनसंग्रह में उपयोग कर, इस कार्य में जो बाधा आयें उनका भी निराकरण कर, अनुभवी लोगों से परामर्श ले, पूर्ण प्रयास कर, तब धन जुट पायेगा। सहस्र हाथों से दान करेगा, तो जितने समय में कमाया है, उससे कम समय में ही चुक जायेगा, तेरे अपने के लिए भी नहीं बचेगा। अतः सहस्र हाथों से दान करने का इतना ही आशय है कि जितनी उमंग से तूने धन कमाया था, उससे अधिक उमंग से दान कर। यह अभिप्राय नहीं है कि इतना दान कर देना है कि अपने लिए भी शेष न रहे।

मंत्र के उत्तरार्ध में यह प्रेरणा दी गयी है कि जितना धन तूने कमाया है और जितना धन भविष्य में कमाने की योजना बनायी है, उससे अधिक कमा, उसकी 'स्फाति' अर्थात् वृद्धि कर। जितना अधिक कमायेगा, उतना ही अधिक दान भी करेगा, अतः दान में भी वृद्धि होगी। धन मिथ्या है, धन तुच्छ है, धन हेय है, यह वेद की दृष्टि नहीं है। वैदिक दृष्टि तो यह है–'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' हम धनों के अधीश्वर हो जायें। हाँ, अधीश्वर होकर हम समग्र धन अपने पास ही न रखे रहें, किन्तु दीन–दुःखियों की ओर उसका प्रवाह होने दें। अतएव वेद पोषक जगदीश्वर से भी तथा पोषक राज्याधिकारी से भी यह कहता है कि आप जो दान का इच्छुक नहीं है, उसे भी दान का इच्छुक करके उससे दान दिलवाओ। इस प्रकार राज–कर और स्वेच्छा से दिया जानेवाला दान ये दोनों ही समाज की आर्थिक विषमता को दूर करनेवाले हैं।

अतः, आओ, हम समाज में दान की भावना उत्पन्न करके आर्थिक विषमता को दूर करें, जिससे राष्ट्र का प्रत्येक मनुष्य अपनी भूख मिटा सके और वस्त्रों से तन ढक सके। ❁❁❁

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

द्वादशः सर्गः

यस्येन्द्रवज्रोपमगोचरेषु वश्येन्द्रियस्य क्षणभंगुरेषु।
नाभून्मनो लीनमयं यमीन्द्रोयातोऽजमेरं जनमंगलार्थी॥ 1॥

विद्युत् के समान चंचल एवं क्षणभंगुर विषयों में यतीन्द्र दयानन्द का मन कभी भी लीन न हुआ। समग्र संसार के कल्याण को चाहनेवाले स्वामीजी पुष्कर से अजमेर आये॥ 1॥

उपेन्द्रवज्रं गिरिदानवानां बलं यथा कुण्ठितवीर्यमास्त।
तथैव तद्वाक्कुलिशाग्रतस्तत् प्रभावहीनं मतवादिवृन्दम्॥ 2॥

जैसे इन्द्र के वज्र के सामने गिरिसमान दानवों की शक्तियाँ कुण्ठित हो गईं थीं, वैसे ही इन मुनिवर के वचन वज्र के सामने मतवादियों की बुद्धि निस्तेज हो गई थी॥ 2॥

भृंगा यथा यान्त्युपजाति मुग्धाः पुष्पामृतं पातुमयु विदग्धाः।
मनोज्ञबोधामृतमार्यशीलाः सुमंगलाचाररतेरुपान्तम्॥ 3॥

जैसे भ्रमर पुष्परस को पीने के लिये मालती-लता के पास मुग्ध होकर जाते हैं, ठीक वैसे ही विद्वान् आर्य सज्जन पवित्र आचरण में लीन स्वामीजी के पास मनोहर ज्ञानामृत पीने के लिये आते थे॥ 3॥

मनोरमारामजुषो महर्षेः कीर्त्ति नटी तत्र पुरे ननर्त्त।
विज्ञापयन्ती गुणगौरवालिं चित्तं हरन्ती गुणिनां विलासैः॥ 4॥

महर्षि अजमेर में श्रीमान् बंसीलाल के सुन्दर बाग में रहते थे। उनकी कीर्त्तिरूपी नटी नगर में उनकी गुण-गरिमा को फैलाती हुई तथा गुणिजनों के मनों को हरण करती हुई मानों नृत्य कर रही थी॥ 4॥

जीवेशसर्गक्रमवेदवाणीविचारणामीशमतानुगैः सः।
घस्रत्रयं वाग्मिवरः सशास्त्रं चक्रे स्वधर्मोत्तमताभिमानी॥ 5॥

अपने धर्म की उत्तमता के अभिमानी वाग्मीश्वर दयानन्दजी, तीन दिन तक ईसाई मतावलम्बी रॉबिन्सन, ग्रे और शूलब्रेड पादरियों के साथ, जीव, ईश्वर, सृष्टि-उत्पत्ति-क्रम तथा ईश्वरवाणी आदि विषयों पर शास्त्रप्रमाणसहित विचारणा करते रहे॥ 5॥

तदीशुदेवस्य परेशतायां पुनर्जनित्वे मरणं गतस्य।
खारोहणादावनुयोगमालां तर्कांशुमाली कलयाम्बभूव॥ 6॥

तर्क के सूर्य स्वामीजी ने ईसाइयों के ईश्वर की ईश्वरता, पुनर्जन्म, मरण, आकाश आरोहण आदि

विषय पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी॥ 6॥

शास्त्रार्थशालागतपादरीशोरुष्टोब्रवीदाहतबुद्धिरेनम्।
कदाचिदीदृग्वचनैरवश्यं कारागृहं यास्यति तर्कशाली॥ 7॥

शास्त्रार्थ-सभा में आये हुए पादरियों के मुखिये ने इनके तर्कों से हतबुद्धि होकर और क्रोधित होकर कहा कि-'स्वामीजी, आप ऐसे तर्कों से अवश्य ही कभी जेल जायेंगे॥ 7॥

स्वसत्यधर्माध्वगतस्य कारा लज्जाकरी मे न बिभेमि नातः।
अनिष्टकृत्स्यां नहि कष्टदातुर्हंसीं गिरं तं मुनिरित्यगादीत्॥ 8॥

मुनिवर ने परमहंस की सी मीठी वाणी में कहा कि-अपने सत्यधर्म पर चलते हुए भले ही मुझे जेल जाना पड़े, यह कोई लज्जा की बात नहीं है। इसलिये मुझे इसका कुछ भी डर नहीं है और मैं मुझे कष्ट देने वालों का अनिष्ट चिन्तन भी नहीं करूंगा॥ 8॥

ऋतं त्यजेयं न नरेन्द्रभीत्या मयासवोऽमी तृणवन्नु हेयाः।
भवत्प्रभुः किं गलपाशदानैर्मायाविलोकै र्निहतो न धीमन्?॥ 9॥

हे बुद्धिमान् पादरियो! मैं राजा के डर से सत्य को त्याग नहीं सकता। मैं अपने प्राणों को धर्म के लिये तृणतुल्य अर्पण कर दूंगा। क्या आपके प्रभु ईसा को धूर्तों ने फाँसी पर चढ़ा कर नहीं मारा था?॥ 9॥

राबिन्सनाख्यस्य निमन्त्रणेन मिमेल तेनादृतवाङ् मुनीन्द्रः।
सुतां स्वजायामिव भुक्तवान्नु ब्रह्मेत्यपृच्छत् स मुनिं महेच्छः॥ 10॥

लाट पादरी रॉबिन्सन के निमंत्रण पर स्वामीजी उनसे मिले, इन्होंने स्वामीजी का बड़ा आदर किया, और एक प्रश्न पूछा कि-ब्रह्मा ने अपनी पुत्री से क्या स्त्री का सा व्यवहार किया था?॥ 10॥

ब्रह्माभिधाना बहवो मनुष्यास्स्यात्तेषु बालागमनापराधी।
ब्रह्मा महर्षिस्तु पवित्रशीलोबभूव धीमानिति तं बभाषे॥ 11॥

स्वामीजी ने कहा कि ब्रह्मा नाम वाले बहुत से मनुष्य हो चुके होंगे! उनमें से किसी एक ने शायद ऐसा किया होगा। किन्तु ब्रह्मा नामक एक महर्षि तो बड़े बिद्वान् और पवित्र चरित्रशाली थे।। 11॥

सुसंगतोक्त्या यतिनः स आंग्लआर्द्रान्तरात्मा प्रणयैः प्रसन्नः।
पत्रं लिखित्वा निजपाणिनेत्थं ददौ मुनीन्द्राय गुणैकगृह्यः॥ 12॥

गुण का पक्षपाती यह अंग्रेज यतिवर की सुसंगत युक्तियों से और उनके प्रेममय व्यवहार से बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने हाथों से स्वामीजी को निम्नलिखित पत्र लिखकर दे दिया॥ 12॥

स्वामी दयानन्दसरस्वतीन्द्रोभद्राच्छविद्वान्निगमागमानाम्।
अस्तीह दृष्टो न मयेदृगन्यः स्वजीवने संस्कृतपण्डितेशः॥ 13॥

"स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसा वेद और शास्त्रों का उद्‌भट पण्डित आज तक मैंने अपने जीवन में दूसरा कोई नहीं देखा॥ 13॥

समागमेनास्य हि सज्जनस्य महान् सुलाभो भविता जनस्य।
प्रेमार्द्रचित्ताः पुरुषा महान्तोभवन्ति नूनं विरला जगत्याम्॥ 14॥

इस सत्पुरुष के समागम से जनता को महान् लाभ होगा। क्योंकि संसार में इस प्रकार के प्रेमार्द्र हृदयवाले महान् पुरुष विरल ही हुआ करते हैं॥ 14॥

रामारमाभ्यां विरतो नितान्तं शान्तांतरंगो भुवनेशभक्तः।
समागमाकांक्षिभिरेष भद्रैर्भद्रान्तरात्माऽऽदरणीय एव॥ 15॥

आप लक्ष्मी और ललना दोनों से नितान्त विरक्त हैं। आप शान्त अंतःकरण हैं एवं ईश्वर के महान् भक्त हैं। भद्र पुरुषों का कर्तव्य है कि वे ऐसे महान् पुरुषों की संगति करें तथा इनका सत्कार करें॥ 15॥

स ऋद्धिभागांगलनियोगिनाथो श्रीयोगिनाथो मृदु संबभाषे।
प्रजेश्वरोऽयं जनकः प्रजानां प्रजास्तु राज्ञोऽपि निजप्रजावत्॥ 16॥

एक बार योगीश्वर दयानन्द की मेजर डेविडसन से भेंट हुई, इन्हें स्वामीजी ने कोमल शब्दों में कहा कि–''राजा प्रजा का पिता है, और राजा को भी चाहिये कि वह प्रजा को अपनी संतति के तुल्य समझे॥ 16॥

पुत्रं प्रयान्तं विपरीतमार्गं पिता निरुन्ध्याद् वरबुद्धिरेवम्।
सुशासकः शासितनिन्द्यकार्यं निवार्य धर्मेषु नियोजयेत्ताः॥ 17॥

उत्तम बुद्धिशाली शासक पिता का कर्तव्य है कि यदि प्रजारूपी पुत्र कुपथगामी हों तो उन्हें उस मार्ग से रोके, और उन्हें उत्तम धर्मकार्यों में लगा दें॥ 17॥

आंग्लेन्द्रवंशाश्रितशासकोत्तमैस्ते दण्डनीया दुरिताशयाः शठाः।
ये वंचयित्वा मतिहीनमानवान् धर्मापदेशेन हरन्ति सम्पदम्॥ 18॥

अंग्रेज बादशाहों का कर्तव्य है कि जो दुष्टाशय धूर्त्त धर्म के नाम पर अज्ञानियों को ठगकर उनसे रुपया ऐंठते हैं–उन्हें वे दण्ड दें॥ 18॥

ऋतं स्वधर्मं मनुजा विहाय ते स्वकीयवंशस्थनयाभिमानिनः।
अविद्यया किल्विषितान्तराः परं तुदन्ति मुग्धांशुभकर्मदम्भतः॥ 19॥

ऐसे लोगों को भी दण्ड दें जो अपने सत्यधर्म को छोड़कर केवल अपनी कुलीनता के मिथ्याभिमानी होकर अविद्या से पापी बनकर शुभ कर्म के दंभ से भोली भाली जनता को दुःख पहुंचाते हैं॥ 19॥

चेतोहरामर्थमयीं सुसंगतां गिरं स गौरो यमिनो निशम्य ताम्।
न शासकाः कस्यचिदग्रधर्मणि क्षिपन्ति हस्ता निति संजगाद तम्॥ 20॥

मेजर डेबिडसन ने स्वामीजी की मनोहर युक्तियुक्त सारगर्भित वाणी सुनकर कहा कि–आपकी बात बिल्कुल ठीक है, किन्तु राज्यकर्ता लोग किसी के धर्म में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते॥ 20॥

अथान्यदोद्यानगतां निषण्णवानासन्दिकां स्वामिवरोऽध्यजीगपत्।
तदोपयन्तं ब्रुकनामकं पुरोऽब्रुवन् विनेयाः प्रविलोक्य सद्गुरुम्।। 21।।

किसी समय स्वामीजी बाग में कुर्सी पर बैठकर पढ़ा रहे थे। उस समय कर्नल ब्रूक को सामने से आते हुए देखकर विद्यार्थियों ने स्वामीजी से कहा कि–॥ 21॥

श्रीकर्नलः शासनकर्मदर्शकः संन्यासिनां द्वेषकरः समागमत्।
निजासनं सारयतु प्रतीपतोमनाग्गुरो तन्नयनाध्वनस्ततः।। 22।।

हे गुरो! गवर्नर जनरल के एजेन्ट कर्नल ब्रूक आ रहे हैं। ये संन्यासियों पर खूब जला करते हैं इसलिये आप जरा अपनी कुर्सी का मुंह फेर लें जिससे यह आपको न देख सकें॥ 22॥

इदन्तु वांछाम्यहमित्युदीर्य सयतिस्स्ववेत्रासनमग्रतोऽकरोत्।
बिभ्युर्विनेया यतिमग्रतः स्थितं निरीक्ष्य चारामगतं विदेशजम्।। 23।।

'यह तो मैं चाहता ही हूँ' ऐसा कहकर संन्यासी ने अपनी कुर्सी और भी आगे बढ़ा दी और कुर्सी पर बैठ गये। स्वामीजी के शिष्य कर्नल ब्रूक को आते देखकर तथा स्वामीजी को आगे बढ़कर बैठे देखकर डर गये॥ 23॥

मा भैष्ट रे तिष्ठत शान्तमानसाइतीरयित्वाऽभ्रमदन्तिकं यमी।
उष्णीषमुत्तार्य स सादरं पुरः समासदत्स्वामिपदं मुदन्वितः।। 24।।

'हे विद्यार्थियो! मत डरो, शान्ति से बैठे रहो।' ऐसा कहकर स्वामीजी समीप घूमने लगे। इतने में कर्नल ब्रूक आ पहुँचे और आदर से प्रसन्नता के साथ टोप उतारकर स्वामीजी के सामने खड़े हुए॥ 24॥

हस्तेन हस्तं परिगृह्य तावुभौ मानं मिथोऽदर्शयतां विचक्षणौ।
आसन्दिके स्वे प्रतिसम्मुखस्थिते उभावलंचक्रतुरुन्नातान्तरौ।। 25।।

दोनों ने साथ ही हस्तधूनन किया, तथा एक दूसरे के प्रति आदरभाव प्रकट किया। बाद में उन्नतहृदय दोनों ही विचक्षण आमने सामने की कुर्सियों पर बैठ गये॥ 25॥

अथो मिथोऽमू परिपृच्छ्य सादरं भव्यं नृभव्योचितचारुचिन्तनौ।
वार्त्तां मुदा तेनतुरिन्दुसुन्दराननौ प्रसंगोत्तमसंगतां शुभाम्।। 26।।

पहले इन दोनों ने एक दूसरे का कुशल प्रश्न पूछा। दोनों के विचार मनुष्य हितकारी थे तथा दोनों ही सौम्य थे। इसलिये इन दोनों ने आनन्द से प्रसंगोपात्त अनेक प्रकार की शुभ बातें कीं॥ 26॥

अनन्तरं योगिवरोऽन्वयुंक्त तं भवान्नु धर्मं वितनोति हन्ति वा?।
न मन्महे धर्मविनाशनं वरं लाभं परं यत्र तदेव तन्महे।। 27।।

बातचीत के प्रसंग में योगिवर ने इनसे पूछा कि–क्या आप धर्म को फैलाना चाहते हैं या नष्ट करना चाहते हैं? कर्नल ब्रूक ने कहा कि हम धर्म का नाश करना अच्छा नहीं मानते किन्तु जिससे मानव समाज को लाभ हो ऐसे ही धर्म को हम स्वीकार करते हैं॥ 27॥

योगेश्वर कृष्ण

पुराणों का बाल गोपाल

लेखकः पं. चमूपति

श्री कृष्ण का चरित्र पुराणों में वर्णित है। परन्तु 'महाभारत' के कृष्ण-चरित्र और पुराणों के कृष्ण-चरित्र में बहुत कम समानता पाई जाती है। जैसे हम भूमिका में कह आए हैं, 'महाभारत' में श्री कृष्ण के सार्वजनिक जीवन को लिया गया है। युधिष्ठिर के साम्राज्य की स्थापना श्री कृष्ण के जीवन का लक्ष्य था। उस लक्ष्य की सिद्धि ही श्री कृष्ण के जीवन का चमत्कार था। पुराणकारों की दृष्टि से यह लक्ष्य समय के दीर्घ अन्तर ने ओझल कर दिया है। किसी चमत्कारी पुरुष के बाल-काल की साधारण घटनाओं में भी आगे जाकर चमत्कार प्रतीत होना स्वाभाविक है। स्वयं 'महाभारत' में इन घटनाओं की ओर संकेत हैं। शिशुपाल इनकी जी खोलकर हँसी उड़ाता तथा अवहेलना करता है, जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि कुछ लोगों को महाभारतकाल में ही इन घटनाओं में कुछ अद्भुत विभूति प्रतीत होने लगी थी। इसके विपरीत पुराणों का मुख्य विषय ही कृष्ण का बाल-काल है। वे इसी की विभूति पर मस्त हैं। दृष्टिकोणों के इस स्पष्ट भेद को ध्यान में रखते हुए श्री कृष्ण के चरित्र-लेखक को इन दोनों कथा-स्रोतों का प्रयोग करना आवश्यक है। वस्तुतः 'महाभारत' और अन्य पुराण श्री कृष्ण के जीवन-वृत्तान्त के सम्बध में एक-दूसरे की पूर्ति करते हैं। 'श्रीमद्भागवत' में इन दोनों कथा-विभागों को मिलाने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु पुराणकार आखिर पुराणकार ही तो है! वह 'महाभारत' के उदात्त मानव-आदर्श को सम्मुख न रखकर देव-लीलाओं की अलौकिक कल्पनाओं के आकाश में बिना पंख के उड़ गया है। पार्थिव-साम्राज्य पुराणकारों के समय में कोई महत्व की वस्तु था ही नहीं। राजनीति और जाति तथा देश का संगठन व्यवहारी मनुष्यों का व्यापार था। श्री कृष्ण देवता थे। उनकी विभूति मानवेतर कार्यों ही में प्रकट हो सकती थी। पौराणिक वृत्तान्त की विशेषता यही मानवेतरता है। तो भी जैसे हमने कहा, वर्णन-शैली की इस विशेषता को ध्यान में रखते हुए अलौकिक वृत्तान्त में भी एक विज्ञ पाठक कुछ वास्तविक घटनाओं की झाँकी पा सकता है।

श्री कृष्ण का जीवन निम्नलिखित पुराणों में वर्णित है-

(1) ब्रह्मपुराण-अध्याय 181 से आगे।

(2) विष्णुपुराण-अंश 5, अध्याय-1-38

विष्णुपुराण में ब्रह्मपुराण से कुछ अधिक प्रकरण हैं। शेष इन दोनों पुराणों का वृत्तान्त एक-से ही

शब्दों में एक ही प्रकार से वर्णित है।

(3) पद्मपुराण–उत्तरखण्ड अ0 272–379

(4) हरिवंश–अध्याय 51–190

(5) ब्रह्मवैवर्त्तपुराण–श्री कृष्ण जन्म–खण्ड

(6) भागवतपुराण–स्कंध 10, 11

(7) वायुपुराण–अध्याय 96

(8) देवीभागवतपुराण–स्कन्ध 4, अध्याय 18–25

(9) अग्निपुराण–अध्याय 12

(10) लिंगपुराण–अध्याय 60

जैसे हम ऊपर कह आए हैं, ब्रह्मपुराण और विष्णुपुराण के तो शब्द ही प्रायः एक–से हैं। शेष पुराणों में घटनाएँ चाहे साधारणतया एक–सी हैं, परन्तु घटनांश सब एक–से नहीं। पुराणों का आधार महाभारतोत्तरकाल की जनश्रुतियाँ हैं। जनश्रुतियों में विभिन्नता होनी स्वाभाविक थी। यही विभिन्नता पुराणों के वृत्तान्त में पाई जाती है। हम यहाँ पुराण–कल्पित कतिपय घटनाओं को लेकर भिन्न–भिन्न पुराणों में उल्लिखित उन घटनाओं के भिन्न–भिन्न स्वरूपों का दिग्दिर्शन मात्र कराएँगें। यह इसलिए कि पाठक कृष्ण–चरित्र के मूलस्रोतों की वर्तमान अवस्था से परिचित हो सकें और लेखक के उक्त परिणामों की यथार्थता को अनुभव कर सकें।

पुराणों में किसी भी अवतार के जन्म से पूर्व पृथिवी को देवसभा में जाना तथा अपने दुःखों की पुकार करनी होती है। भगवान् का अवतार इसी पुकार का परिणाम होता है। श्री कृष्ण के सम्बन्ध में भी यह घटना हुई है। परन्तु प्रत्येक पुराण की इस अवतरणिका का घटना–क्रम कई अंशों में भिन्न है। संभवतः प्रचलित रीति का अनुसरण–मात्र ही लक्ष्य में रखकर प्रत्येक लेखक ने अपनी कल्पना की उड़ान का रास्ता स्वतन्त्र निश्चित किया है।

'ब्रह्मवैवर्त' श्री कृष्ण के किसी मानवी माता के गर्भ में आने को सहन नहीं कर सका। उसके कथनानुसार देवकी के गर्भ में ''वात'' का आवास था। देवकी की मूर्च्छा में ''वायु'' के निकलते ही श्री कृष्ण उसके सम्मुख आ खड़े हुए। इसके विपरीत 'भागवत', 'ब्रह्म', 'विष्णु', 'पद्म', 'हरिवंश' तथा 'देवीभागवत' भगवान् के मानवीय ढंग के जन्म ही का वर्णन करते हैं।

ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, भागवत, अग्नि और लिंग पुराण जन्मकाल में श्री कृष्ण को चतुर्भुज कहते हैं, परन्तु 'ब्रह्मवैवर्त्त' में इन्हें द्विभुज और मुरलीहस्त कहा गया है। ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में श्री कृष्ण का परिवर्तन नन्द की तत्काल उत्पन्न हुई कन्या योगमाया से यशोदा की मूर्च्छा–दशा में वसुदेव ने स्वयं कर लिया है। परन्तु 'देवीभागवत' में नन्द के दरवाजे पर खड़ी एक सैरंध्री यह पुण्य–कार्य करती है। वायुपुराण तथा विष्णुपुराण में यह घटना यशोदा के ज्ञान से होती है।

अन्य पुराणों में योगमाया को कंस पटककर मार देते हैं, परन्तु 'ब्रह्मवैवर्त्त' में इसे उसके माता-पिता को लौटा देते हैं और वह कृष्ण के रुक्मिणी के साथ विवाह के समय उपस्थित होती है।

'हरिवंश' में पूतना कंस की धात्री है। उसका रूप पक्षी का है। 'ब्रह्मवैवर्त्त' में वह कंस की बहिन है और उसका रूप ब्राह्मणी का है।

ऊखल से बाँधे जाने का कारण 'ब्रह्मवैवर्त्त' तथा 'पद्म' में श्री कृष्ण का मक्खन खाना है, परन्तु 'भागवत' में यशोदा से ऐसे समय जबकि वह दही बिलो रही थीं, दूध पीने की याचना करना है।

'ब्रह्म' और विष्णुपुराण में व्रज से वृन्दावन प्रस्थान करने के पश्चात् कृष्ण और बलराम सात वर्ष के हुए। 'हरिवंश' के अनुसार, व्रज ही में इनकी आयु सात वर्ष की थी।

'ब्रह्मवैवर्त्त' में प्रलम्बासुर एक बैल है; 'ब्रह्म', 'विष्णु' और 'हरिवंश' में मनुष्य।

ब्रह्मपुराण तथा विष्णुपुराण में रास-लीला का वर्णन है। 'हरिवंश' में केवल गोपियों की इच्छा का उल्लेख है, और पद्मपुराण तो भगवान् को सर्व-व्यापकता के आश्रय उनके परस्त्री-संसर्ग में दोष ही नहीं देखता। 'ब्रह्मवैवर्त्त' श्री कृष्ण के "किशोर-चरित" की समाप्ति उनके एक मास-भर की उक्त क्रीड़ा के साथ कर देता है।

अन्य पुराणों का कहना है कि वृषासुर को श्री कृष्ण ने, उसका अपना सींग उखाड़कर और उसी से उस पर प्रहार कर, मार दिया। पद्मपुराण इस प्रहार का साधन एक ताड़ के वृक्ष को बताता है। ऐसा ही भेद अश्वासुर के मारने के प्रकार में भी पाया जाता है। 'ब्रह्म', 'विष्णु' तथा 'हरिवंश' में श्री कृष्ण के सन्दीपनि के पास अध्ययन का काल चौंसठ दिन लिखा है। श्री कृष्ण ने गुरुदक्षिणा-रूप में सन्दीपनि का मरा हुआ बालक जिला दिया है। 'ब्रह्मवैवर्त्त' में शिक्षा का काल एक मास है और गुरु-पुत्र के संजीवन का उल्लेख है ही नहीं।

रुक्मिणी ने विवाह का सन्देश पद्मपुराण के लेखानुसार पुरोहितपुत्र के हाथ भेजा था, 'ब्रह्मवैवर्त्त' के अनुसार सुधर्मा नामक ब्राह्मण के हाथ यह सन्देश रुक्मिणी के पिता भीष्मक ने भेजा था। कुण्डिनपुर के द्वार पर श्री कृष्ण का रुक्मी के साथ युद्ध हुआ। रुक्मी हार गया। भीष्मक ने कृष्ण का उचित स्वागत कर उसके साथ रुक्मिणी का विवाह कर दिया। परन्तु अन्य पुराणों में इस विवाह को "राक्षसविवाह' कहा है।

'ब्रह्म', 'विष्णु' तथा 'हरिवंश' में केवल रुक्मिणी के पेट से पैदा हुए लड़कों के नाम दिये हैं, परन्तु अन्य पुराणों में अन्य स्त्रियों की सन्तानें भी बताई हैं। उन सन्तानों की संख्या बहुत अधिक हो गई है।

सुदामा के साथ सखित्व का वृत्तान्त 'भागवत' 41, 'ब्रह्मवैवर्त्त' 1, 3-40 तथा पद्मपुराण में दिया गया है। ये सभी पुराण नवीन हैं। इनसे पुरानी पुस्तकों में इस सखित्व का वर्णन नहीं है। 'भागवत' में इस मित्र का नाम कुचेल है। सुदामा मथुरा के एक मालाकार का नाम है।

इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से पता लगता है कि श्री कृष्ण का बाल-चरित अनिश्चित जनश्रुतियों के रूप में ही पुराणकारों को प्राप्त हुआ था। उन्होंने उसी को अपनी कल्पना के आलोक में

चमकाकर जनता की मुग्ध श्रद्धा का पात्र बना दिया। फलतः भक्तों का ध्यान श्री कृष्ण के साम्राज्य–संस्थापन जैसे महान्, तथापि मानवकार्य से हटकर उनकी मानवेतर बालकाल की अलौकिक लीलाओं पर ही जम गया।

बंकिम पुराणोक्त कथाओं की यथार्थता स्वीकार नहीं करते। ये महानुभाव श्री कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते हैं, परन्तु 'महाभारत' की पहली तह में जिसे इन्होंने श्री कृष्ण की जीवनी के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रामाणिक कृति माना है, इनका कहना है कि–

"पहली तह में कृष्ण ईश्वर या विष्णु के अवतार कहीं नहीं माने गए हैं। उन्होंने स्वयं भी अपना ईश्वरत्व कहीं नहीं माना है। कृष्ण ने मानुषी शक्ति के अतिरिक्त दैवी शक्ति से कहीं कोई काम नहीं लिया है।"

हमने इस विषय को इस ग्रन्थ में नहीं छेड़ा। सम्भवतः इसका उपयुक्त स्थान गीता की व्याख्या में हो।

पुराणकार पूर्वोक्त घटनाओं का वर्णन बड़ी धूमधाम से करते हैं। हमारे संक्षिप्त संकेतों में सम्भवतः पुराण–कथित बालगोपाल की कथा का पूरा तो क्या, अधूरा उल्लेख भी नहीं हो सका। बीज–रूप में सम्भवतः ये घटनाएँ ऐतिहासिक हों, परन्तु इनका विस्तार, जैसे स्वयं भिन्न–भिन्न पुराणों में आए वृत्तान्तों के पारस्परिक भेदों से स्पष्ट है, काल्पनिक ही है। इन कल्पनाओं का स्थान किसी उपन्यास में हो सकता है, इतिहास में नहीं। कुछेक में कल्पनाएँ वस्तुतः बहुत मधुर–अत्यन्त मनोहर हैं। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

राजार्षि पुरुषोत्तमदास टंडन	1 अगस्त
अरविन्द घोष	15 अगस्त
गोस्वामी तुलसीदास	22 अगस्त
राजगुरू	24 अगस्त

भारत छोड़ो आन्दोलन दिवस (1942)	9 अगस्त
स्वतंत्रता दिवस	15 अगस्त
रक्षा बन्धन	29 अगस्त

महापुरुषों की पुण्यतिथि

लोकमान्य तिलक	1 अगस्त
बाल गंगाधर तिलक	1 अगस्त
सुरेन्द्रनाथ वनर्जी	6 अगस्त
रविन्द्रनाथ टैगौर	8 अगस्त
खुदीराम बोस	11 अगस्त
मेडम भिकाजी कामा	13 अगस्त
वीर गुलाबसिंह	14 अगस्त
मदनलाल धींगरा	17 अगस्त
नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	18 अगस्त

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

ईश्वर ने दुनियां क्यों बनाई?

लेखकः पं० रामचन्द्र देहलवी

यह ख्याल या प्रश्न कि **'ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई'**? यह इसलिए पैदा होता है कि इस दुनियां में आदमी जो भी काम करता है अपनी गरज को लेकर करता है। मनुष्य का यह स्वभाव बन गया है।

कोई आदमी इलेक्शन में खड़ा होता है। क्या जनता की भलाई के लिए? नहीं। बिल्कुल नहीं! स्पष्ट कथन है। उसका अपना स्वार्थ होता है जिसे वह दृष्टि में रखकर चुनाव लड़ता है। चाहें वह इसके द्वारा प्रतिष्ठा चाहता हो, चाहे शोहरत चाहता हो या धन चाहता हो। तो ज्ञात हो गया कि मनुष्य सारे कार्य स्वार्थवश करता है, अपनी गरज को लेकर करता है, उसी को मुख्य या मुकद्दम रखता है।

इसी आधार पर लोगों ने ईश्वर के बारे में भी सोचा और ख्याल किया कि ईश्वर की भी दुनियां को बनाने में कोई गरज है। मैं कहता हूँ कि दुनियां के बनाने में खुदा की कोई गरज नहीं है और यदि कोई Impetus है तो यही है कि अगर मैं अपने इल्म को, अपनी कारीगरी को दुनियां में न जाहिर करूँ तो मैं निकम्मा रहूंगा, useless रहूँगा। यही कारण है कि जिसकी वजह से ईश्वर जगत को अनन्तकाल से उत्पन्न करता चला आ रहा है। यह सिलसिला अटूट है।

जीवात्मा मौजूद है। परमात्मा ने जगत बना दिया। जीवात्मा को शरीर प्रदान करके ईश्वर कहता है कि–''मैं तुझे मनुष्य का शरीर प्रदान करता हूँ जिससे तू मननशीलता से काम करे। जैसे मैंने मननशीलता से जगत को बनाया है तू भी मननशीलता से काम कर। तू भी मननशीलता से अपना छोटा सा जगत बना सकता है। तेरे को मैं ज्ञान प्रदान करता हूँ (सृष्टी के आदि में भगवान ने वेदों का ज्ञान दिया) तू इसके द्वारा उन्नति कर।''

इस ज्ञान के आधार पर जीवात्मा ने उन्नति और अवनति करनी प्रारम्भ की। दोनों काम कर सकता है न! कहना मान भी सकता है और न भी माने, फर्माबरदारी करे, और न भी करे दोनों बातें हैं। Capricious will है न जीवात्मा की–जीवात्मा स्वतंत्र है, जीवात्मा चाहे अच्छा करे, चाहे बुरा करे, उसकी मर्जी है। और इसी के लिये सजा और जजा मुकर्रर है।

बाकी और योनियों वाले जीवात्माओं के लिये नहीं हैं। क्योंकि बाकी तो जेलखाने में कैद हैं, वह तो जहां है तहां हैं। वह तो उसी महदूद (सीमित) दायरे में रहते हैं उससे आगे नहीं निकल सकते।

इन्सान के लिये ऐसा नहीं है वह स्वतंत्र है। तो वह अपनी इन्द्रियों को, अपने मन और अपनी बुद्धि को जिस तरह चाहे वैसे प्रयोग में लाये। चाहे अच्छी तरह काम में लाये, चाहे बुरी तरह काम में लाये।

दुनियां में पाप और पुण्य और कुछ नहीं है केवल अपनी ताकत का गलत बेजा इस्तेमाल करना पाप है और बजा या उचित इस्तेमाल करना पुण्य है। अतः अपनी शक्ति का उचित उपयोग करें या अनुचित करें।

भगवान् ने सब कुछ जता दिया और जताने के बाद शरीर दे दिया और कह दिया कि अब तो उचित अनुचित का विचार करके अपना कार्य करता चला जा। यदि वह अपनी शक्तियों का उचित उपयोग करता है तो दुबारा भी मनुष्य योनि प्राप्त कर लेगा। किन्तु शक्ति का अनुचित प्रयोग करने पर ईश्वर उसको मनुष्य योनि योग्य नहीं समझता और उसे नीची योनि में भेज देता है क्योंकि उसने दूसरों को नुकसान पहुँचाया है, अपनी स्वतंत्रता का गलत इस्तेमाल किया। कैसे? आप समझ जायेगें।

एक बच्चा स्कूल में जाता है। लेकिन बच्चा बड़ा उद्दण्ड है। किसी की कापी फाड़ देता है, किसी की किताड़ फाड़ देता है, किसी की स्याही उडेल देता है, किसी को मारने लगता है, किसी के कान खींच लेता है, खूब शरारत करता है, मास्टर साहब उसके संरक्षक से शिकायत करते हैं कि तुम्हारा बच्चा ठीक नहीं है, उसको उद्दण्डता करने से मना कीजिये। अगर आगे वह अच्छी तरह व्यवहार करेगा तो उसको स्कूल में रखेंगे वर्ना निकाल देंगे।

लेकिन पुरानी आदत है, जल्दी छूटती नहीं है। इसलिये क्या हुआ कि बच्चा जब दुबारा स्कूल गया तो उसने फिर वही शरारत करनी शुरू की। मास्टर साहब ने उसके पिता को लिख दिया कि आपका बच्चा अब स्कूल में नहीं रह सकेगा, इसलिये अब आप इसे स्कूल न भेजिये। हमने इसे स्कूल से निकाल दिया है, इससे अन्य बच्चों पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

इस पर बाप लड़के से बहुत नाराज हुआ और कहने लगा कि "मैंने तुझे मना किया था कि तू आगे से ऐसा काम न करना और तुझे आजमाइश के लिये स्कूल में दोबारा भेजा था। लेकिन आजमाइश में भी तू बाज नहीं आया और पूर्ववत् ही शरारतें कीं। अब तुम यहीं रहो। तुम्हें हम बाहर नहीं निकलने देंगे। बाहर बिल्कुल नहीं जाना है। खाने व पानी पीने के लिये भी पूछकर जाना होगा।"

जैसे अपने बच्चे को बाप ने कैद कर दिया। इसी प्रकार परमात्मा, उन जीवात्माओं को जो उसकी आज्ञा का पालन नहीं करते हैं, उसकी हिदायतों के बर्खिलाफ चलते हैं, उन्हें दूसरी नीची योनियों में गधा, कुत्ता आदि के रूप में भेज देते हैं। यहां ये महदूद दायरे में रहते हैं उससे आगे नहीं जा सकते। इस प्रकार उन्हें कैद कर देता है।

इन्सानी जिस्म में तो जीवात्मा दोनों जगह एक सी है। गर्वनमेंट के कैदखाने में भी इंसानी जिस्म में हैं और स्वतंत्र स्थान में भी इंसानी जिस्म में।

मैं व्याख्यान दे रहा हूँ किन्तु कोई ऐसा काम करूँ जिससे मुझे जेलखाने में जाना पड़े तो इसी जिस्म के साथ चला जाऊँगा, लेकिन भगवान् का ऐसा कोई कायदा नहीं है। भगवान् जब कैद करता है तो जिस्म बदल देता है और अवस्था भी बदल देता है।

अब वहाँ जाकर वह आगे नहीं बढ़ सकेगा। गधे को आज तक यह मौका नहीं मिला कि वह वेद पढ़े चाहे उस पर हजार वेद लाद दीजिये। कहीं शास्त्रार्थ में जाना हो और उस पर वेद लादकर ले जायें तो वह पण्डित नहीं कहलायेगा। उसके लिए तो वह वेद बोझ के समान ही हैं।

तो भगवान् ने जीवात्मा से वह चीज (उसकी स्वतंत्रता) छीन ली जिसके वह लायक नहीं है, योग्य नहीं है, या जिसका वह अनुचित प्रयोग करता है तो लड़के के पिता द्वारा कैद किया जाना ईश्वर की व्यवस्था की नकल है। यह कोई नई चीज नहीं है।

दुनियां में हम कोई नई चीज पैदा ही नहीं कर सकते। Invention कहना बिल्कुल गलत है। तमाम नियम मौजूद हैं। इन नियमों के पहिचान लेने की और तदनुकूल कोई कार्य करने को ही Invention कहते हैं।

परमात्मा की साइंस के नियम हर जगह करते हैं कोई जगह उनसे खाली नहीं है। हमने केवल उन नियमों को जानकर ही किसी का आविष्कार किया है जिसे Invention कहते हैं। इसलिये दुनियां में हम जो कुछ भी कर रहे हैं वह भगवान् के नियमों को जानकर उसकी नकल कर रहे हैं।

भगवान् के तरीके से कोई नई चीज हम न करते हैं और न कर सकते हैं। मैंने जो मिसाल दी थी कि उस्ताद इम्तहान में अपने बेटे को भी नहीं बताता है, जो परीक्षाहाल में गलत जबाब दे रहा है, जबकि उसने उसे स्वयं पढ़ाया है।

लोगों ने यही मुझसे पूछा था कि–"भगवान हमें बुरे काम करने से क्यों नहीं रोकता?" इसलिये नहीं रोकता कि वह इम्तहान का वक्त है। उसे कैसे रोके? वह तो आपकी योग्यता की पूरी जाँच करेगा। दूसरे किसी की नकल भी न कर सकोगे। अब पूरे परिक्षण के पश्चात् सजा दी गई है।

अब उस दोषी जीवात्मा को उसने वहां कैद कर दिया है वह अब तक सीमित दायरे में रहे। जो स्वतंत्र जीवात्माएं हैं वे स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य कर रही हैं।

परमात्मा ने कहा–"शादी करना चाहते हो तो शादी कर लो। गृहस्थ आश्रम का पालन करो। समाज की व्यवस्था हम करेंगे। तीन फैक्ट्री होंगी। जिनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तैयार किये जायेंगे। जिन्होंने ब्राह्मण के गुण हासिल किये हैं वे ब्राह्मण बनेंगे, जिन्होंने क्षत्रिय के गुण हासिल किये वे क्षत्रिय और जिन्होंने वैश्य की योग्यता हासिल की है वे वैश्य बनेंगे। ये तीन फैक्ट्री होंगी जिनके अन्दर ये तीन प्रकार के मनुष्य तैयार होंगे।"

यह हो सकता है कि उन्नति करके कोई मनुष्य वैश्य से क्षत्रिय या क्षत्रिय से ब्राह्मण बन जाये। यह भी हो सकता है कि अवनति हो जाये और ब्राह्मण बन जाये क्षत्रिय या क्षत्रिय से वैश्य बन जाये। यह हमारे व्यवहार में भी होता है।

मास्टर बच्चों को पढ़ाता है। उन पढ़ाये हुए बच्चों में से कुछ ऐसे भी होते हैं जो नीची कक्षा के योग्य हों जिन्हें नीची कक्षा में छोड़ना पड़े क्योंकि वे उस कक्षा के योग्य नहीं है। मनुष्य की व्यवस्था में भी यह होता ही है, कोई नई बात नहीं है। भगवान् की भी यही व्यवस्था है।

ब्राह्मण अधिक से अधिक कोशिश यह करेगा कि उसका बेटा ब्राह्मण बने, क्षत्रिय चाहेगा कि उसका बेटा क्षत्रिय ही बने और वैश्य भी अपनी सन्तान को वैश्य ही बनाना चाहेगा। किन्तु अगर किसी में अधिक योग्यता है तो वह ऊँचा जा सकेगा। वह रोकने की चीज तो नहीं है।

प्रत्येक खानदान में एक दूसरी चीज भी हो रही है तीन पैमाने वैदिक सभ्यता के बन रहे हैं। मां, बहन और बेटी के तीन पैमाने जो बड़े सच्चे व सही पैमाने हैं, जो आर्य परिवारों में तैयार हो रहे हैं। क्या वहाँ उनकी पवित्रता में कोई शंका हो सकती है?

अगर भाई अपनी बहन से बातें कर रहा है, क्या कोई शंका करता है? बेटा अपनी मां से और बाप अपनी बेटी से जब बातें करता है तो क्या कोई शंका करता है? क्या किसी को कोई शक होता है? बिल्कुल नहीं होता? क्यों नहीं होता? वे बिल्कुल पवित्र स्थान हैं, वहां रिश्ते की इतनी पवित्रता है कि किसी भी शक की गुंजाइश ही नहीं है। मां, बहिन और बेटी के सच्चे पैमाने जो व्यवहार में आते हैं उनका निर्माण हो रहा है परिवारों में।

परिवारों में इस सच्चे पैमाने का निर्माण ईश्वर की ओर से क्यों स्थापित किया गया? इसलिये कि तुमको अपने घर से बाहर जाकर सोसायटी मूव करना है। वहाँ तुम्हें तुमसे गैर औरतें मिलेंगी। जो तुम्हारी बिरादरी की होंगी और तुम्हें उनके बीच में काम करना पड़ेगा। वे तुमसे छोटी होंगी, तुम्हारे बराबर की होंगी और तुमसे बड़ी भी होंगी। इन तीनों के साथ कैसा व्यवहार करना है? यह आर्य परिवारों में बताया गया है।

ये पैमाने ऐसे हैं जिनमें कोई अपवित्रता नहीं है। ये पैमाने अपने खान-ए-दिल में रखकर के जाओ और बाहर जाकर यदि अपने से बड़ी स्त्री हो तो उसे माता के तुल्य समझो और यदि छोटी हो तो अपनी बेटी के तुल्य समझो अगर बराबर की हो तो बहन समान समझो।

इसी प्रकार उन्हीं तीन पैमानों से उन्हें नाप लो। अपने हृदय को पवित्र रखो और उनके कार्यों में सहायक होकर उनके मार्गों को सुरक्षित बनाओ, उन्हें प्रशस्त करो।

आज प्रत्येक पिता अपनी पुत्री को कहीं अकेला भेजने में शंका करता है क्योंकि पैमाने गलत होते जा रहे हैं। इन पैमाने को बिगाड़ने में सिनेमा मुख्य कारण है। यह मैंने ही अनुभव नहीं किया है बल्कि जो सिनेमा प्रबन्धक और विचारशील पुरुष हैं वे भी सभी यही कहते हैं।

मैं एक बार हापुड़ जा रहा था उसी डिब्बे में एक और साहब भी थे जो सिनेमा का सामान लेकर देहरादून जा रहे थे। वे मेरे वाकिफ थे मुझे कहीं उन्होंने देखा था। मुझे देखने पर उन्होंने नमस्ते की।

मैंने पूछा-**"कहिये क्या ले जा रहे हैं?"** कहने लगे पण्डित जी क्या बतायें आपसे कहने में शर्म आती है। वे कुछ चलचित्रों की प्रशंसा कर रहे थे और सिनेमा के बारे में ही बातें हो रही थी। मैंने उनसे बीच में ही पूछा कि बताइये सिनेमा द्वारा आपने समाज की क्या सेवा की है? क्या अच्छा जवाब दिया उन्होंने, कहने लगे-**"पण्डितजी आपसे क्या छिपाना है? बिल्कुल सच कहूँगा। हमने आज अपने भाइयों को भी अपने खानदान में ही ऐतबार के लायक नहीं रखा है। सिनेमा का इतना जोरदार प्रचार किया है हम लोगों ने कि-मनोवृत्तियां लोगों की बिल्कुल बिगाड़ दी हैं। ये अत्यन्त दूषित हो चुकी हैं।"** -(शेष अगले अंक में)

प्रेम विचित्र वस्तु है!

रचयिताः रामनरेश त्रिपाठी

(1)

प्रेम विचित्र वस्तु है जग में अद्भुत शक्ति–निधान,
प्रेम मनुज को जागृति में भी रखता सुप्त समान।
प्रेम–नशा जब छा जाता है आँखों में भरपूर,
उसी दिवस से समझो उनसे हुई नींद भी दूर॥

(2)

प्रेम एक है पर प्रभाव है उसका युगल प्रकार,
प्रेम संयोग वियोग काल में सुखप्रद, दुखद अपार।
मधुर सुगंध विहीन पुष्प ज्यों चन्द्र चन्द्रिका–हीन,
त्यों फीका जग में मनुष्य का जीवन प्रेम–विहीन॥

(3)

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेमरूप भगवान,
प्रेम विश्व का संस्थापक है, प्रेम विश्व का प्राण।
प्रेम जाति का जीवन जग में, प्रेम अभेद अशोक,
प्रेम सभ्यता का भूषण है, प्रेम हृदय–आलोक॥

(4)

कड़वी सब पीड़ा है उनसे होता चित्त अधीर,
पर मीठी लगती है जग में सत्य प्रेम की पीर।
व्याकुल हुआ प्रेम–पीड़ा से जिसका कभी न प्राण,
भाग्यहीन उस निष्ठुर का है उर सचमुच पाषाण॥

(5)

जिस पर दया–दृष्टि करते हैं मंगलमय भगवान,
सच्ची प्रेम यन्त्रणा से वह पीड़ित होता प्राण।
जिसने अनुभव किया प्रेम की पीड़ा का आनन्द,
उससे बढ़ कर कौन जगत में सुखी और स्वच्छन्द॥

(6)

प्रेमोन्मत्त हृदय में रहता द्वेष न वैर विरोध,
बसा प्रेम तब निकल भगे सब लोभ मोह मद क्रोध।
मधुर-प्रेम-वेदना-विमोहित सुख निद्रामय मरुत,
लखता है प्रियतम छवि दृग भर फिर कर जगत समस्त॥

(7)

फूल पंखड़ी में पल्लव में प्रियतम रूप निहार,
तुरत उमड़ आता है उसके उर में मोद अपार।
कली बिलोक मुसकुरा उठता करके मत्त प्रलाप,
"देखें कब तक इन पत्तों में लुके रहेंगे आप।"

(8)

ज्योत्सना कभी सरित जल में मिल करती केलि विलास,
उज्ज्वल विमल रजत कणिकामय रेतराशि पर वास।
प्रेम भरे अधखुले दृगों से लख शशि ओर सहास,
प्रेम समझ मुग्ध होता है प्रियतम-हास-विकास॥

(9)

उसे प्रेममय लख पड़ता है यह समस्त संसार,
प्रेम मग्न करता है वह नित प्रेमोद्यान-विहार।
प्रेम-वेदना-व्यथित हृदय से मथित प्रेम की आह,
कढ़ कर भूतल में भरती है नवजीवन-उत्साह॥

❀❀❀

पाठकों से नम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2014 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2015 के वार्षिक शुल्क सहित शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका सुचारू रूप से आपको प्राप्त होती रहे।

–व्यवस्थापक

पूजा-धर्म

लेखकः— महात्मा हंसराज

(1) जो विद्वान् वृद्ध होकर वृद्धि को प्राप्त होता है जो सबको अच्छे बुद्धिमान सुशील तथा धर्माचरण करनेवाले करता है, और जो निर्विकार जन्ममरण बुढ़ापा आदि दोषों से रहित परमात्मा की उपासना करते हैं, वे प्रशंसा करने योग्य हैं।

(2) जैसे बिजलियाँ अथाह गुणवाली हैं वैसे ही परमात्म के असंख्य गुण हैं और जो परमात्मा और यथार्थ वक्ताजनों का त्याग करके दुष्टों का संग करते हैं वे सब काल में दुःखी होते हैं।

(3) हे मनुष्यों! जिसकी महिमा के समान महिमा, ऐश्वर्य सामर्थ्य के समान सामर्थ्य और स्वरूप नहीं विद्यमान है उसी सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर का निरन्तर ध्यान करो।

(4) हे मनुष्यो! जो अनन्तगुण कर्म और स्वभावयुक्त और सर्वदा प्रबन्ध करनेवाला उपासना किया हुआ सुख को देनेवाला ईश्वर है वही सबसे उपासना करने योग्य है।

(5) हे मनुष्यो! जिस जगदीश्वर ने जगत् के पालने के लिये आकर्षण करने और वृष्टि तथा प्रकाश करनेवाला सूर्य और मेघ बनाया इस कारण से जगदीश्वर के तुल्य कोई भी नहीं है फिर अधिक कहाँ से हो यह सत्य जानिये।

(6) हे मनुष्यो! जो सूर्य आदि का उत्पन्न करनेवाला, प्रकाशक और धारण करनेवाला तथा सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त जगदीश्वर है उसकी आत्मा के साथ निरन्तर उपासना करो।

(7) परमेश्वर का स्वभाव है कि जो सत्य का उपदेश देते हैं उनको सदा उत्साहित करता और रक्षा में धारण करता और ऐश्वर्य को प्राप्त कराता है और जैसे विनय से युक्त एक भी राजा राज्य पालन करने को समर्थ होता है वैसे ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि की सदा रक्षा करता है।

(8) हे राजा लोगो! जैसे ईश्वर पक्षपात का त्याग करके सबका न्याय से पालन करने वाला है वैसे ही होकर आप लोग धन के स्वामी हूजिये।

(9) हे प्रजा जनो! जैसे राजा आप लोगों की वृद्धि करे वैसे आप लोग भी इसकी वृद्धि करिये और सब योगाभ्यास करके प्राणों में वर्त्तमान परमात्मा को जानकर दुःखों का नाश करिये।

(10) जो राजा सत्यवादी है और सत्य बोलने वालों को प्रसन्न करता है और विद्वानों से विद्या और विनय को प्राप्त होकर सदा ही प्रजा के सुख को चाहता है तथा यश और उत्तम सुगन्धित फल पुष्प से युक्त वृक्षों से और लता आदिकों से सबको सुखयुक्त करता हुआ, जल औषधि वृक्ष गौ घोड़ा और मनुष्यों के सुख की वृद्धि के लिये परमेश्वर वा विद्वानों से याचना करता है वही इस लोक और परलोक के अनन्त आनन्द को प्राप्त होता है।

(11) हे मनुष्यों आप लोग परस्पर मित्र होकर परमेश्वर और सबके कल्याण के लिये प्रवृत्त यथार्थवक्ता उपदेशक का सदा ही सत्कार करो जिससे हम लोगों को उत्तम बुद्धि और वाणी प्राप्त होवे।

(12) जो मनुष्य जैसे सर्वत्र व्यापक, सहायक परमेश्वर को पुकारते हैं वे वैसे ही राजा का भी सर्वत्र आश्रयण करें।

(13) हे विद्वान् जनो! हम लोग आप लोगों से पूछते हैं कि इस संसार में कौन ईश्वर की प्रशंसा करता, कौन सबका न्याय से पालन करता और कौन विद्वानों का सत्कार करता है, इन प्रश्नों का क्रम से उत्तर-जो विद्या और योग से धनयुक्त है वह सर्वदा परमेश्वर ही की स्तुति करता है, और जो न्यायकारी राजा पक्षपात को त्यागकर अपराधी को दण्ड देता और धार्मिक का सत्कार करता है वह सर्व रक्षक है और जो स्वयम् विद्वान गुण और दोषों का जाननेवाला है वही विद्वानों का सत्कार करने योग्य है ये उत्तर हैं।

(14) हे मनुष्यो! जैसे ईश्वर ने पृथ्वी और सूर्यादि सम्पूर्ण संसार को अपनी सत्ता से स्थापित किया वैसे ही बिजली सम्पूर्ण द्रव्यों में अभिव्याप्त होकर मध्य में प्रविष्ट है, ईश्वर की उपासना और बिजली आदि के प्रयोगों से दूर पर स्थित भी जो शत्रुओं को जीतकर सबको जीवन दो।

(15) जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या प्रकाशक, व्याध के समान दुष्टों के मारने वाले, आप्त विद्वान् के समान न्याय करनेवाले, ईश्वर के समान सबके पालनेवाले, सत्य के उपदेश करने वाले तथा धर्म करने वाले मनुष्य की प्रशंसा करते हैं वे ही इस संसार में परीक्षा करनेवाले होते हैं।

(16) हे विद्वानो! जिस ईश्वर ने सूर्य आदि जगत् एक बार उत्पन्न किया वह इस सृष्टि के साथ नहीं उत्पन्न होता किन्तु इस सृष्टि से भिन्न अर्थात् भेद को प्राप्त होकर सबको शीघ्र उत्पन्न करता है उसी का ध्यान तुम लोग करो।

(17) हे मनुष्यो! जिस वायु से योगी जन विविध प्रकार के विज्ञान को प्राप्त होते हैं तथा जिससे सब जगत् वा प्राणी जीते हैं उसके अभ्यास से परमात्मा को जानकर मुक्ति-पथ से आनन्द को प्राप्त होओ।

(18) सब मनुष्य विद्वान् से प्रेरणा पाये हुए विद्या और नम्रता के व्यवहार में वृद्ध होकर सब जगत् के पालने वाले परमात्मा की सत्य व्यवहार से प्रशंसा करें जिससे अविनाशी सुख को प्राप्त हों।

(19) हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर सब जगत् का निर्माण करके मनुष्यादिकों का उपकार करता है उसके आश्रय से हम लोग धनवान् और बहुत आयु वाले हों।

(20) हे मनुष्यो! जैसे परमेश्वर ने प्राणियों के उपकार के लिये जगत् बनाया, वैसे इससे तुम लोग पुष्कल उपकार ग्रहण करो।

(21) हे विद्वानो! जैसे ईश्वर से निर्मित किये गये पृथ्वी, आदि पदार्थ प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे ही तुम विद्या-दान से सबको सुखी करो।

(22) हे मनुष्यो जैसे ईश्वर के रचे हुए सूर्यादि पदार्थ सब मनुष्य आदि प्राणियों के कार्यसिद्धि के निमित्त है वैसे आप लोग भी सबकी कार्यसिद्धि करने वाले हों।

(23) हे मनुष्यो! तुम जन्म मरणादि व्यवहार से रहित जो जगदीश्वर है उसकी कृपा और पुरुषार्थ से तथा सम्पूर्ण पृथ्वी आदि पदार्थों के विज्ञान से अपनी-2 उन्नति निरन्तर करो।

(24) जो विद्यार्थी विद्या और प्रगल्भता की इच्छा करते हैं वे यथार्थ वक्ता तथा ईश्वर के गुण कर्म और स्वभावों को धारण कर इष्ट मति और विद्या को प्राप्त होते हैं।

(25) हे मनुष्यो! सबसे नमस्कार करने योग्य परमेश्वर के सहाय रूप से हम लोग उत्तम क्रिया को धारण कर और दुष्टता को निवार विद्वानों के लिये हित सिद्ध कर सबका उपकार सदैव करें।

(26) हे विद्वान् जनो! जो सूर्य के तुल्य, जीव के तुल्य वा परमात्मा के तुल्य शुभ गुण कर्म स्वभावों से देदीप्यमान, विद्या और विनय से युक्त, उत्तम यत्न के साथ वाणी मन और शरीर से पिता के समान प्रजाजनों की पालन करने को प्रयत्न करता है उस चक्रवर्ती, सर्वोत्कृष्ट विद्वान् और सत्कार करने योग्य राजा के लिये राज्य में सत्य नीति को आप लोग समझावें जिससे यह सर्वत्र धर्मयुक्त यशवाला हो।

(27) हे विद्वानो! जैसे जगत् में जगदीश्वर अभिव्याप्त होकर सबकी रक्षा करता है वैसे ही इस जगत् में व्याप्त होकर विद्या और विनय से समस्त राज्य को पुत्र के समान पालो।

(28) हे मनुष्यो! जैसे ईश्वर से नियुक्त किया सूर्य लोक प्रतिक्षण अपनी क्रिया को नहीं छोड़ता वैसे ही जो राजा न्याय से राज्य पालने के लिये प्रतिक्षण उद्योग करता है, एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोता तथा सब मनुष्यों का उत्तम कर्मों के बीच आप वर्त्तमान कर उन्हें प्रेरणा देता है वही शम दम आदि शुभ गुणों से युक्त राजा होने योग्य है यह सब जानें। ❁❁❁

पुस्तकों का महत्व

(1)

पुस्तकें ही विश्व का ये ज्ञान है विज्ञान है,
पुस्तकें ही वेद है और वेद का भगवान है,
संस्कृति सागर में पुस्तकें हैं प्रकाश स्तम्भ,
पुस्तकें खिड़की, जगत् को देखता इंसान है।

(2)

हर समस्या के समाधानों के रास्ते न रुकें,
जो जगाने आदमी को दे रही है दस्तकें,
भीड़ में, एकान्त में या मुसीबत के समय,
आपकी है हम सफर बस दोस्त, साथी पुस्तकें।

(3)

बात ऋषियों से करें या करें इतिहास से,
आप ये किरदार पायेंगे खुदी के पास से,
यह है पुरखों की विरासत जो मिली है आपको,
ये विरासत साथ हो तो तब बचें उपहास से।

(4)

कितना दिलकश हो सकेगा जिन्दगी का ये सफर,
आसमां में यों उड़े जैसे लगे खुशियों के पर,
अब, झुंझलाहट मिटे और अक्ल में हो ताजगी,
ये सभी सम्भव है बातें संग में पुस्तक अगर।

विद्याध्ययन का प्रकार

लेखकः–किशोरीलाल गुप्त

उपहूतो वाचस्पति रुपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम्।
संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि।। –(अ0 1।1।4)

विद्यार्थियो! तुम जब अपनी कक्षा में बैठते हो, प्रायः कतरनी की भाँति जीभ चलाते ही रहते हो। तुम्हारे लिए एक मिनिट भी शान्त भाव से चुपचाप बैठना कठिन हो जाता है। जान पड़ता है सब्जी मंडी में कचरियाँ बिक रही हैं। अध्यापक बड़े तन मन से पढ़ा रहा है, लेकिन तुम्हारे मन के प्ले ग्राउण्ड में क्रिकेटबॉल में हिट लग रहा है, और तुम बेहताशा दौड़ते हुए रन बना रहे हो। तुम्हें पता नहीं इस बीच में अध्यापक ने क्या–क्या इम्पौरटैंट बातें बता दीं। घर पहुँचे। किताब खोली। सबक निकाला। देखा तो कुछ समझ में न आया दूसरे दिन स्कूल गये। बैंच पर टँग गये। फिर भी तुम्हारी आँखें न खुलीं। इम्तिहान के दिन समीप आ गये। ट्यूशन करने की सूझी। पर मित्रो! महीनों की पढ़ाई दिनों में क्योंकर पूरी हो। तुम फेल हो गये। मुहर्रमी सूरत बनाये घर आये। माँ को रंज हुआ; पिता को बुरा लगा; अड़ोसी–पड़ोसियों ने कहा कपूत लड़का है। दूसरे दिन स्कूल गये; बराबर बालों में खिल्ली उड़ी; अध्यापक नाराज हुए।

पर यह सब कुछ किस लिए हुआ? इसीलिए न, कि क्लास में तुमने ध्यानपूर्वक अपना पाठ सुना नहीं। जिसने सुना, ध्यान दिया, वह पास हुआ; इनाम पाया। आप खुश हुआ; अध्यापकों को प्रसन्न किया; माता–पिता के चित्त को शान्ति दी; अड़ौसी-पड़ोसी खुश हुये; जिस रिश्तेदार ने सुना खुशी मनाई। क्लास के लड़के भी उसी की इज्जत करते हैं जो इम्तिहान में अब्बल पास होता है। लेकिन याद रक्खो अब्बल पास वही होता है जो क्लास में ध्यानपूर्वक पाठ को सुनता है।

देखो! यह वेदमंत्र विद्या पढ़ने की, सच्चे विद्यार्थी बनने की कैसी सुन्दर विधि बता रहा है।

अन्वयः– वाचस्पतिः उपहूतः, वाचस्पतिः आस्मान् उपव्हयताम्।
संश्रुतेन गमेमहि, श्रुतेन मा विराधिषि।।

शब्दार्थः– (वाचस्पतिः) विद्या के भंडार गुरूजी महाराज (उपहूतः) आदर और सम्मान पूर्वक बुलाए गये हैं, (वाचस्पतिः) वे हमारे पूज्य गुरुवर्य, (अस्मान्) हम विद्यार्थियों को (उपह्वयताम्) प्रेम पूर्वक समीप बुलावें। हम सब विद्यार्थी वर्ग (संश्रुतेन) भली प्रकार, खूब ध्यान पूर्वक गुरु–मुख से निकले हुए शब्दों को सुनते हुए, (गमेमहि) विद्यार्थी जीवन को बितावें; (श्रुतेन) सुनने से, लिखने पढ़ने से, विद्याध्ययन से, (मा विराधिषि) हरगिज, कभी भी विमुख न होवें।

व्याख्या:– वाच: शब्द 'वाक' का बहुवचन है। सन्ध्या करते हुए हम ओ३म् 'वाक् वाक्' जो कहते हैं वह यही 'वाक्' है। इसका अर्थ है–वाणी, बोलने की शक्ति। इस स्थान पर इस शब्द के बहुवचन का प्रयोग हुआ है अत: इसका अर्थ हुआ 'बहुत सी भाषाएँ, अनेक विद्याएँ, विविध विज्ञान। 'पति' का अर्थ है स्वामी, मालिक, मास्टर।

'हु' धातु का अर्थ है बुलाना, दान देना, प्रसन्न करना, यज्ञ करना। 'हवन' इसी धातु से बना है। पहले जमाने में यज्ञ की अग्नि बाहर से नहीं लाई जाती थी। दियासलाइयाँ तो थीं ही नहीं। तुम यह सुन कर आश्चर्य करोगे कि 'अरनी' वृक्ष की दो लकड़ियों को रगड़ कर उनमें से अग्नि उत्पन्न की जाती थी। आश्चर्य गोया कि ऋषि लोग अरनी को लकड़ियों में से अग्नि को सम्मान पूर्वक बुलाकर उपस्थित करते थे। इसी क्रिया का नाम अग्नि का 'आह्वान' करना है। यह 'आह्वान' शब्द भी इसी 'हु' धातु से बना है; केवल इसके पूर्व 'आ' उपसर्ग और लगा दिया गया है। जो सामग्री हवन में अर्पित की जाती है उसे 'हवि:' कहते हैं। यह शब्द भी 'हु' धातु से ही बना है।

हमारा (उपहूत:) शब्द भी इसी 'हु' धातु का बच्चा है। (उप) के माने है 'समीप'; और (हुत:) का अर्थ है 'सम्मानपूर्वक' प्रेम पूर्वक बुलाया हुआ। जैसे सभापति के समीप बैठने वाला, सभापति के समीप के पद वाला उपसभापति, मंत्री के समीप पद वाला उप मंत्री, उसी प्रकार आदरपूर्वक, प्रेमपूर्वक समीप बुलाया हुआ ''उपहूत'' कहलाता है।

(संश्रुतेन) यह त्रितीया विभक्ति का एकवचन है। इसे हिन्दी व्याकरण में 'करण कारक' कहते हैं। 'सं' उपसर्ग है। इसका अर्थ है 'भली भाँति' ध्यानपूर्वक, 'सम्बन्ध' में भी यही 'सं' उपसर्ग है जिसका अर्थ है अच्छी प्रकार बँध जाना। जब वर वरनी का सम्बन्ध हो जाता है, वे भली भाँति प्रेम के रिश्ते में बँध जाते हैं। इसी प्रकार (संश्रुतेन) का अर्थ हुआ 'अच्छी प्रकार ध्यानपूर्वक सुनते हुए। हिन्दी भाषा का शब्द 'सुन' इसी 'श्रु' धातु से बना हुआ अपभ्रंश है। वेद को 'श्रुति' इसीलिये कहते हैं कि पहले उसे विद्यार्थी सुन–सुन कर कंठ याद किया करते थे।

'गम्' धातु का अर्थ है 'चलना'। 'गमन' इसी से बना है। जैसे 'वन गमन' वन को जाना। इसलिये (गमेमहि) का अर्थ हुआ 'चलें' व्यवहार करें।

(मा) निषेध अर्थ में अव्यय है। जैसे (मागच्छ) मतजा; (माकुर) मतकर (असत्यं मा बद) असत्य मत बोल। (मा गमेमहि) न चलें, (मा विराधिषि) विमुख न हों।

(विराधिषि) में 'वि' उपसर्ग है। इसका अर्थ है 'न होना' जैसे 'विराग' राग का न होना, प्रेम न होना। 'विमुख' उलटा मुख कर लेना, मुख फेर लेना, खिलाफ हो जाना। 'राध' वही धातु है जिससे 'आराधना' और 'राधा' आदि शब्द बनते हैं। (विराध) का अर्थ हुआ प्रेम न होना (मा विराधिषि) प्रेम शून्य न हो अर्थात् खूब प्रेम बनाए रक्खें। किससे? (संश्रुतेन) अच्छी तरह पाठ सुनने से ध्यानपूर्वक अध्ययन करने से। ❁❁❁

गतांक से आगे–

साधारण कार्य और कर्तव्य

अनुवादकर्ता–ठा० कल्याणसिंह शेखावत

मूर्ख देखता है कि क्षुद्र दोष, क्षुद्र अत्याचार और क्षुद्र पाप महत्त्व नहीं रखते और वे क्षमा कर दिये जाते हैं। वह अपने को भुलावा देता है कि मैं जब तक कोई उत्कृष्ट पाप या व्यभिचार न करूँ तब तक पुण्यात्मा हूँ। परन्तु ऐसा विचारने से उसका थोड़ा बहुत पुण्य है सो भी नष्ट हो जाता है और वह दुराचारी मान लिया जाता है। फिर लोग न उसका मान करते, न उसको प्यार करते, न उसको किसी काम का समझते और न उसका कोई प्रभाव रहता है। इस प्रकार अध:पतन को प्राप्त हुआ मनुष्य यदि समाज को सुधारने की चेष्टा करे, अपने सहचारियों को पाप से बचाने का उपदेश करे तो उसकी चेष्टा और उपदेश निष्फल और व्यर्थ हैं। जितना वह अपने क्षुद्र दोषों को तुच्छ समझता है उतना ही तुच्छ उसका चरित्र और मनुष्यत्व है। जिस मनमानी स्वतंत्रता से वह दोष करता और अपनी दुर्बलता को प्रकाशित करता है, वही मनमानी स्वतंत्रता असावधानी और मानहानि में रूपान्तरित होकर उसको वापस मिलती है। उसको कोई नहीं पूछता, क्योंकि बुराई सिखाने वाले को कौन पूछे? उसका कार्य सम्पन्न नहीं होता, क्योंकि दुर्बलता का सहारा कौन ले? उसका उपदेश कोई नहीं सुनता, क्योंकि वह अभ्यास, विवेक और अनुभव से शून्य होता है। कोई गूँज के पीछे थोड़ा ही दौड़ता है।

वह मनुष्य जो बुद्धिमान है या बुद्धिमान बन रहा है उस भय को देखता है जो उन साधारण दोषों में अन्तर्व्याप्त रहता है जिनको लोग असावधानी से करते हैं और कुछ दण्ड नहीं पाते। वह उस मुक्ति को भी देखता और पहिचानता है जो उन दोषों के त्यागने और पवित्र विचार तथा कार्य करने से प्राप्त होती है परन्तु जिसको बहुतेरे लोग तुच्छ समझते हैं। वह उस शान्त आन्तरिक आत्मदमन को भी पहिचानता है जो दैनिक कार्यों में करना पड़ता है, परन्तु जिसको मनुष्य बहुधा अपनी दृष्टि में नहीं लाते।

जो मनुष्य अपने छोटे से छोटे दोष और पाप को बड़ा और भयंकर समझता है वह महात्मा और साधु हो जाता है। उसके प्रत्येक विचार और कार्य में जो विस्तारयुक्त प्रभाव उत्पन्न होता है उसको वह देखता और पहिचानता है। वह अपने चरित की उन छोटे–छोटे अंशों की सम्पूर्णता या न्यूनता को–जिनसे उसका जीवन रचा जाता है और जिनसे वह बिगड़ता या अच्छा बनता है–बड़ी सावधानी से देखता है। इसी हेतु वह अपनी देखरेख करके अपने को थोड़ा–थोड़ा और धीरे–धीरे पवित्र और सम्पूर्ण बनाता जाता है।

जैसे समुद्र बिन्दुओं से, पृथ्वी कणों से तारे प्रकाश की नोकों से बने हुए हैं उसी प्रकार जीवन छोटे–छोटे विचारों और कार्यों से बना हुआ है। बिना इनके जीवन स्थित नहीं रहता। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का जीवन जैसे उसके पृथक्–पृथक् विचार और कार्य होते हैं वैसा ही होता है। उन्हीं विचारों और

कार्यों का संघटन वह मनुष्य है। जैसे वर्ष गिने हुए क्रमबद्ध क्षणों का समूह है उसी प्रकार मनुष्य-जीवन और चरित्र क्रमबद्ध विचारों और कार्यों का समूह और संगठन है और जैसे-जैसे इसके पृथक् अंग या भाग होंगे उसी प्रकार का यह समस्त और समूचा होगा।

वर्ष सब ऋतुओं का बना हुआ है और भूमंडल सर्व प्रकार के पदार्थों का समूह है।

छोटे-छोटे उपकारों, उदारताओं और आत्मसमर्पणों से दयालु और उपकारी स्वभाव बनता है। छोटे-छोटे आत्मोत्सर्गों, सहनशीलताओं और आत्मविजयों से मनुष्य शक्तिमान् और उन्नतचरित्र बनता है। वास्तविक खरा मनुष्य वही है जो जीवन के छोटे-छोटे व्यवहार में खरापन रखता है। सुयोग्य जन वह है जो अपने तुच्छ से तुच्छ वचन और कार्यों में भी सुयोग्यता दिखाता है।

मनुष्य धोखा खाते और समझते हैं कि जीवन क्षणिक विचारों और कार्यों से भिन्न और पृथक् है। यह नहीं समझते कि तनिक-तनिक से विचार और कार्य जीवन की जड़ और सार हैं। जब यह सिद्धान्त समझ में आ जाता है तो सब वस्तुएँ पवित्र दिखाई देने लगती हैं और सब कार्य और कर्त्तव्य धर्मयुक्त ज्ञात होने लगते हैं। छोटे-छोटे व्यवहारों में सत्य लिपटा हुआ रहता है। सम्पूर्णता ही निपुणता है।

''अधिकार और प्राप्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, अनुमतियाँ बदल जाती हैं और मन के उद्वेग परिवर्त्तनशील हैं। परन्तु कर्त्तव्य न ग्रसित होता, न घटता और न अच्छी या बुरी घटनाओं के तूफान से हिलता है।''

जीवन के भाग क्रमशः व्यतीत होते हैं। समस्त जीवन एक साथ व्यतीत नहीं होता। यदि तुम चाहो तो प्रत्येक भाग को योग्यता से सम्पूर्ण कर सकते हो। ऐसा करने से सम्पूर्ण जीवन में कहीं भी त्रुटि नहीं रह सकती। यह कहावत प्रचलित है कि ''यदि तुम पैसों की चौकसी करोगे तो रुपये अपनी चौकसी आप रख लेंगे।'' यह कहावत सांसारिक व्यवहार में ही युक्तियुक्त नहीं हैं किन्तु सूक्ष्म संसार में यह और भी अधिक प्रयुक्त है। वर्त्तमान में जो कार्य से जीवन और चरित का समस्त समूह ठीक होता है तो यह तुम्हारी बड़ी सावधानी और निपुणता है। महती और प्रशंसनीय बातें करने की लालसा न करो। वर्त्तमान में जो कार्य तुम्हारे सन्मुख है यदि तुम उसको योग्यता के साथ करोगे तो प्रशंसनीय बातें अपने आप सिद्ध हो जावेंगी। तुम्हारे आधुनिक कार्य में जो रुकावटें और प्रतिबन्धकताएँ हैं उनसे मत घबराओ, किन्तु निःस्वार्थता के साथ उसको किये जाओ। असन्तोष, आलस्य और महत्कार्यों के करने के मूर्ख विचार को छोड़ो। ऐसा करने से वह महत्ता जिसके प्राप्त करने के लिये तुम पुकार रहे थे स्वतः ही तुम्हारे निकट आ जायेगी। चिड़चिड़ेपन के बराबर और कोई दुर्बलता नहीं है। आन्तरिक बड़प्पन प्राप्त करने का उद्योग करो, न कि बाहरी प्रशंसा प्राप्त करने का-वह तो अपने आप आ जायगी।

कार्य करने में जो कठिनाइयाँ और कष्ट तुम्हें प्रतीत होते हैं वे उस कार्य में नहीं है किन्तु तुम्हारे मन में हैं। यदि उस कार्य की ओर तुम अपना मनोभाव बदल डालो तो टेढ़ा मार्ग झटपट सीधा हो

शेष पृष्ठ सं.34 पर

मन की गुप्त शक्ति! मानुषी शक्तियों को वश में रखना और सन्मार्ग पर लगाना।

लेखकः पं० राजाराम प्रोफेसर

संसार में सबसे प्रबल शक्तियाँ वे हैं जो गुप्त और अव्यक्त रूप से काम करती हैं और उनमें जितनी जिसकी शक्ति अधिक होती है उतनी ही वह सन्मार्ग पर लगाने से उपयोगी और कुमार्ग पर लगाने से हानिकर होती है। भाप, बिजली आदि पदार्थों के विषय में तो यह बात प्रत्यक्ष है और सब कोई इसे जानते हैं, परन्तु ऐसे लोग अभी बहुत ही कम हैं जो इस ज्ञान को मन के विषय में लगा सकें। मन में विचार शक्तियाँ जो सबसे अधिक प्रबल होती हैं निरन्तर पैदा होती रहती हैं और सुख अथवा दुःख का रूप धारण करके सर्वत्र पहुँचाती रहती हैं।

जब मनुष्य उन्नति करते-करते इस अवस्था में पहुँच जाता है, तो वह इन सब शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। इस स्थूल जगत् में मनुष्य की सम्पूर्ण बुद्धिमानी इस बात में है कि वह अपने मन को पूर्णतया अपने वश में रक्खे, स्वार्थ को अपने हृदय से सर्वथा निकाल दे। ईश्वर की आज्ञा है कि 'अपने शत्रुओं से भी प्रेम करो' इसके अर्थ यही है कि जो मानसिक शक्तियाँ मनुष्य को स्वार्थपरता और विषयवासना की ओर ले जाती है और जिनका वह दास बना हुआ है, उन्हें पूर्ण रूप से अपने वश में कर ले और उन पर अपना पूरा-पूरा अधिकार जमा ले।

यहूदी भविष्यद्वक्ताओं को ईश्वरीय नियमों का पूरा-पूरा ज्ञान था। वे सदा बाह्य घटनाओं का आंतरिक विचारों से सम्बन्ध बतलाया करते थे, यहाँ तक कि समाज के उत्थान और पतन को वे उस समय के सामाजिक विचारों और भावों का कार्य बतलाते थे। विचार में कितनी प्रबल शक्ति है इसके ज्ञान से ही वे भविष्य-वाणी किया करते थे। वास्तव में यही ज्ञान सम्पूर्ण शक्ति और बुद्धिमानी का कारण है। सामाजिक घटनाएँ केवल समाज की मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों का परिणाम हैं। दुर्भिक्ष, महामारी और संग्राम मानसिक शक्तियों के दुरुपयोग से पैदा होते हैं और ईश्वरीय नियमानुसार नाश का कारण होते हैं। किसी एक व्यक्ति अथवा एक समुदाय को युद्ध का कारण बतलाना मूर्खता है। इसका कारण परले दरजे की सामाजिक स्वार्थपरता ही है।

धीरे-धीरे काम करनेवाली और सब पर असर डालनेवाली यही विचार शक्तियाँ हैं जिनसे सब बातें प्रगट होती हैं। और तो क्या यह सम्पूर्ण संसार ही विचार से उत्पन्न हुआ है। पुद्गल के विषय में यदि काट छाँट की जाए तो यही ज्ञात होगा कि पुद्गल केवल एक विचार है जो स्थूल रूप में आ गया है। मनुष्य के सम्पूर्ण कार्य पहले विचार रूप में थे, पीछे स्थूल रूप में आए। ग्रंथकार, चित्रकार, शिल्पकार पहले अपने काम का नक्शा अपने मन में बनाते हैं, अर्थात् वे जो कुछ लिखना या बनाना चाहते हैं, पहले उसका

ढाँचा अपने मन में सोच लेते हैं, पीछे उसे बाह्य रूप में लाते हैं। भावार्थ कोई भी काम हो, पहले उसका मन में विचार आता है, पीछे वह काम होता है।

जब मानसिक शक्तियों का ईश्वरीय नियम के अनुसार सदुपयोग किया जाता है, तो उनसे उत्तम और पवित्र विचारों की ऐसी पक्की इमारत बनती है कि जिसका कभी नाश नहीं होता परन्तु यदि उनका दुरुपयोग किया जाए तो उनसे वह इमारत कमजोर होकर अपने आप नष्ट हो जाती है।

यदि तुम अपने विचारों को उत्कृष्ट भलाई की सर्वशक्ति और उच्चता की ओर पूर्ण श्रद्धा से लगाओगे तो तुम उस भलाई के साथ मिलकर काम कर सकोगे और तुम्हें स्वयं अपने भीतर प्रत्येक बुराई तथा उसके नाश करने के कारण का अनुभव हो जाएगा। श्रद्धा करो, फिर तुम्हारा जीवन आनन्द से व्यतीत होगा। पहले सम्यक् श्रद्धा की जरूरत है। मुक्ति के वास्तविक अर्थ यही है। अर्थात् नित्य और अविनाशीक भलाई के अनन्त प्रकाश में प्रवेश करके तथा अपने मन में उसका पूर्णतया विचार और अनुभव करके बुराई के अंधकार से बचे रहना और उससे इन्कार करना।

जहाँ कहीं भय, शंका, चिंता, व्यथा अथवा दुःख शोक और निराशा होती हैं वहाँ अज्ञानता और अश्रद्धा होती है। इन सम्पूर्ण मानसिक अवस्थाओं का कारण स्वार्थपरता और बुराई की शक्ति में श्रद्धा का होना है। ऐसी श्रद्धा का होना नास्तिकता का सूचक है। जो मनुष्य ऐसी नीच और पतित मानसिक अवस्थाओं में जीवन व्यतीत करता है और उनके आधीन रहता है, वह वास्तव में नास्तिक है।

ऐसी अवस्थाओं से प्रत्येक व्यक्ति और जाति को पृथक् रहना चाहिये। जब तक मनुष्य उनके वश में है और उनका दास बन रहा है, तब तक उसको कदापि मुक्ति नहीं मिल सकती। भय खाना या चिंता करना ऐसा ही पाप है, जैसा कि किसी को श्राप देना, कारण कि जिस मनुष्य को नित्य न्याय, अनन्त प्रेम और भलाई की सर्वशक्ति पर दृढ़ विश्वास है, वह न तो कभी भय खा सकता है और न कभी चिंता कर सकता है। भय खाना, चिंता करना और शंका करना ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करना है।

इन्हीं मानसिक अवस्थाओं से सर्व प्रकार की निर्बलता और असफलता देखने में आती है, कारण कि ये अवस्थाएँ विचार की उत्तम शक्तियों को काटनेवाली और नाश करनेवाली हैं। यदि ये अवस्थाएँ न होतीं तो वे शक्तियाँ अपने अभीष्ट को बलपूर्वक प्राप्त कर लेतीं और उनसे उत्तम और उपयोगी परिणाम निकलते।

जो मनुष्य इन हानिकर अवस्थाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, अर्थात् इनको दूर कर देता है, वह उच्चतर जीवन में प्रवेश करता है और दासत्व के बन्धन से निकल कर स्वामित्व पद को प्राप्त करता है। अब प्रश्न यह है कि इन अवस्थाओं पर विजय प्राप्त करने का क्या उपाय है? केवल एक उपाय है और वह यह है कि मनुष्य दृढ़ता के साथ अपने आंतरिक अर्थात् मानसिक ज्ञान की उन्नति करता रहे। केवल मन में बुराई से इन्कार करना काफी नहीं है। प्रतिदिन उसकी असलियत को समझते और उसके छोड़ने का अभ्यास करना चाहिये। इसी प्रकार केवल मन में भलाई को स्वीकार करना काफी नहीं है। निरन्तर उसको

समझने और प्रवृत्ति में लाने का उद्योग करना चाहिये।

जो मनुष्य अपने को वश में करना जान जाता है, उसे अपनी भीतरी मानसिक शक्तियों का शीघ्र ज्ञान हो जाता है और धीरे-धीरे उसे उन्हें सन्मार्ग पर लगाने की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। जितना तुम अपने ऊपर अधिकार प्राप्त करोगे और अपनी मानसिक शक्तियों के वश में होने के बजाए उनको अपने वश में करोगे, उतना ही बाह्य वस्तुओं और घटनाओं पर तुम्हारा अधिकार हो जाएगा और उनको तुम समझने लगोगे।

मुझे कोई ऐसा मनुष्य दिखलाओ कि जिसके स्पर्श करने से प्रत्येक वस्तु राख के समान चूर-चूर हो जाती है और जो हाथ में आई हुई सफलता को भी नहीं रख सकता है। मैं तुम्हें सिद्ध कर दूँगा कि वह सदा मन की नीच और पतित अवस्थाओं में जीवन व्यतीत करता है। सदा सन्देह के कीचड़ में पड़े रहना, निरन्तर भय के बालू रेत में फँसे रहना और रात दिन चिंतारूपी आँधी के झोंकों से परेशान रहना दास बनना है और दासत्व का जीवन व्यतीत करना है, चाहे प्रभुत्व, अधिकार और सफलता भीतर आने के लिए सदा द्वार को खटखटाती रहें। ऐसा मनुष्य श्रद्धाहीन है, उसके भाव और विचार उसके वश में नहीं है, इस कारण वह अपने काम का ठीक प्रबन्ध नहीं कर सकता और घटनाओं का दास बन रहा है। वास्तव में वह अपना दास आप है। ऐसे मनुष्यों को विपत्ति शिक्षा देती है और वे अन्त में बहुत कुछ अनुभव के बाद समय की नर्मी गर्मी सह कर निर्बलता से बल प्राप्त करते हैं।

श्रद्धा और संकल्प जीवन की मुख्य प्रेरक शक्तियाँ हैं। संसार में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है कि जो अटल विश्वास और दृढ़ संकल्प के द्वारा पूरा न हो सके। प्रतिदिन विश्वास के बल से मानसिक शक्तियाँ एकत्र हो जाती हैं और प्रतिदिन संकल्प की दृढ़ता से वे शक्तियाँ काम के पूरा करने की तरफ लग जाती हैं।

संसार में चाहे तुम किसी भी स्थिति में हो, तुम उस समय तक किसी भी अंश में शक्ति, लाभ और सफलता की आशा नहीं कर सकते कि जब तक तुम शांति और संतोष के द्वारा अपनी मानसिक शक्तियों को एक ओर आकर्षित करना न सीखो। सम्भव है कि तुम कारोबारी आदमी हो और तुम्हें अचानक किसी विपत्ति या कठिनाई का सामना करना पड़े। ऐसी दशा में तुम भयभीत हो जाते हो और चिन्ता में पड़ जाते हो कि क्या करें। स्मरण रहे ऐसी मानसिक अवस्था का बराबर बने रहना नाश का कारण है, कारण कि जब चिंता हो जाती है तो ठीक-ठीक सोचने और समझने की शक्ति जाती रहती है। अब तुम यदि सबेरे उठते ही या संध्या के समय अवकाश पाने पर दो चार घड़ी के लिए किसी निर्जन स्थान में चले जाओ अथवा अपने घर में ही किसी एकांत स्थान में चले जाओ कि जहाँ कोई बाधक न हो और वहाँ आराम से बैठकर अपने मन से जबरदस्ती चिंता को निकाल कर उसे अपने जीवन की अन्य किसी उत्तम और सुखदायक वस्तु की ओर लगाओ तो निश्चय से तुम्हारे मन में धीरे-धीरे शांति आती जाएगी और तुम्हारी चिंता जाती रहेगी। जब कभी तुम अपने मन को भय और चिंता की अवस्था में आते देखो, उसी समय उसे वहाँ से हटाकर सन्तोष और शांति की ओर ले आओ। जब तुम्हारे हृदय में पूर्ण रूप

से शांति हो जाए, तब तुम निर्भय होकर अपनी कठिनाई के दूर करने में अपने मन को लगाओ। जो बात तुम्हें भय और चिंता की अवस्था में कठिन और अजेय मालूम होती थी, वही अब बिल्कुल सरल और स्पष्ट रूप से देख सकोगे कि कठिनाई को दूर करने का कौन सा सरल उपाय है और किस प्रकार इच्छित फल की प्राप्ति हो सकती है। सम्भव है कि तुम्हें अपने मन को वश में करने और अपने हृदय में शान्ति उत्पन्न करने के लिए लगातार कई दिन तक उद्योग करना पड़े, परन्तु यदि तुम दृढ़ता से अपने कार्य में तत्पर रहोगे, तो तुम्हें दिखाई दे, उसमें प्रवृत्त रहना चाहिये। सम्भव है कि जब तुम फिर अपने दैनिक कार्य व्यवहार में लगो और भय और चिंता तुम्हें आकर सताएँ, तो तुम यह सोचने लगोगे कि वह मार्ग ठीक नहीं है और उसके अनुसार प्रवृत्ति करना मूर्खता है, परन्तु तुम ऐसे विचारों को अपने मन में स्थान मत दो। जो बात तुम्हें शांति की हालत में सूझी थी बिल्कुल उसके अनुसार कार्य करो, भय और चिंता के विचारों की ओर मत जाओ। शांति के समय सब बातें साफ मालूम होती हैं और उस समय विचार शक्ति भी निर्दोष होती है। इस प्रकार मन को साधने से भिन्न-भिन्न विचार शक्तियाँ जो इधर-उधर तितर बितर हो रही हैं, एकत्र होकर विचारणीय विषय की ओर लग सकती हैं और कठिनाई को दूर कर सकती हैं।

संसार में ऐसा कोई भी काम नहीं है कि जो एकाग्र चित्त होकर शांति से करने से आसान नहीं हो जाता और ऐसा कोई पदार्थ नहीं है कि जो आत्मिक शक्तियों को सावधानी और बुद्धिमानी से उपयोग में लाने से प्राप्त नहीं हो जाता।

जब तक मनुष्य अपनी भीतरी अवस्था का ध्यानपूर्वक विचार नहीं करता और अपने भीतरी शत्रुओं अर्थात् क्रोधादि कषायों और वासनाओं की जय नहीं करता, तब तक उसको विचार शक्ति की प्रबलता का ठीक-ठीक अनुमान नहीं हो सकता और न इस बात का ज्ञान हो सकता है कि मन का बाह्य और स्थूल पदार्थों से कैसा कार्य कारण का अविनाभावी सम्बन्ध है और जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के समझने और उनके परिवर्तन करने में विचार में यदि उसकी ठीक-ठीक जाँच करके उसे सन्मार्ग पर लगाया जाय तो कैसी और कितनी प्रबल शक्ति है।

प्रत्येक विचार जो तुम्हारे मन में आता है एक तीर के सदृश है। उसमें जितनी शक्ति और तेजी होगी, उसी के अनुसार वह दूसरे मनुष्यों के हृदयों में जाकर असर करेगा और फिर लौट कर तुम पर अपना बुरा या भला असर डालेगा। एक मन का दूसरे मन से परस्पर में सम्बन्ध होता है और विचार शक्तियाँ बराबर एक दूसरे में आती जाती रहती हैं। स्वार्थ और अशांति के पैदा करनेवाले विचार नीच और नाशक शक्तियाँ हैं, उन्हें दुष्टता के दूत समझना चाहिये। वे दूसरे मनुष्यों के मन में दुष्टता के विचार पैदा करने और उन्हें बढ़ाने के लिए भेजे जाते हैं, परन्तु उनके मन इन दुष्टता के दूतों अर्थात् दुष्टता के विचारों को और भी अधिक प्रबल बनाकर उल्टा तुम्हारे पास भेज देते हैं। इसके विपरीत पवित्रता, नि:स्वार्थता और शांति के विचार देवदूतों के सदृश हैं जो स्वर्ग से इस पृथिवी पर सुख, शांति और ऐश्वर्य लाते हैं और दुष्ट और हानिकर शक्तियों को रोकते हैं, शोक और संताप का काला मुँह करके हर्ष और आनन्द उत्पन्न करते हैं और जो मनुष्य निराशा रूपी गड्ढे में पड़े हुए हैं उन्हें मुक्ति की आशा दिलाते हैं।

-शेष अगले अंक में

आत्म-शिक्षण

लेखकः श्यामबिहारी मिश्र

आत्म-शिक्षण से सुन्दर चरित्र और स्वभाव प्राप्त होते हैं। सुस्वभाव और चरित्र-प्राप्ति के साधनों का अभ्यास करना ही एक प्रकार से आत्म-शिक्षण कहा जा सकता है। स्वभाव सहज और प्राप्त दो प्रकार का होता है। सभी लोगों को उत्पत्ति से ही कुछ बातों की ओर प्राकृतिक चित्ताकर्षण होता है। यही उनका सहज स्वभाव है। इसका विशेष ज्ञान आयुर्वेद और धार्मिक विषयों से सम्बन्ध रखता हैं और यह भी कहा जा सकता है कि इसका पूर्ण ज्ञान मनुष्य को अद्यावधि प्राप्त नहीं हुआ है। कुछ लोग जन्म से ही बलिष्ठ, कुछ दुर्बल, कुछ कोमल, कुछ क्रूर, कुछ धार्मिक, कुछ दुष्ट-प्रकृति इत्यादि होते हैं। इन बातों के कारण उनके वंश परम्परागत गुण दोष, सांसारिक अनुभव, उनका समय विशेष दशाओं में व्यतीत होना, पूर्वजन्म के संस्कार आदि अनेकानेक कहे गए हैं, और इन सब बातों का कुछ-कुछ प्रभाव पड़ता भी अवश्य है, किन्तु वर्त्तमान समय के भारतीय पंडितों के बहुमत का झुकाव इस ओर है कि सहज और प्राप्त स्वभावों के फल एक दूसरे से ऐसे मिले हुए हैं कि उनका पृथक् करना कठिन है। बहुत लोगों की प्राकृतिक, शारीरिक गठन बलिष्ठ होती है किन्तु फिर भी व्यायाम, नियम आचरणों आदि के अभाव से कभी-कभी वे उसको ऐसा शिथिल बना देते हैं कि निर्बल से निर्बल मनुष्य की गठन से भी वह बुरी हो जाती है। ऐसी दशा में सहज स्वभाव, प्राप्त स्वभाव के कारण भ्रष्ट हो जाता है। वही लोहा बेपरवाही से पड़ा रहने से कोयले सा काला और काँच सा टूटनेवाला हो जाता है, किन्तु प्रयत्न करने से खड्ग के रूप में आकर शीशे सा चमकदार और वज्र सा कठोर बन जाता है। अतः सहज और प्राप्त स्वभावों में बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। केवल सहज गुणों से प्रधानता प्राप्त करने में किसी की उतनी महिमा कदापि नहीं होनी चाहिए जितनी कि प्राप्त गुणों से गौरव की उपलब्धि में है। कम से कम यह प्रकट है कि प्राप्त स्वभाव सहज स्वभाव का एक बहुत बड़ा परिपोषक है। इसलियें हम आत्म-शिक्षण में प्राप्त स्वभाव की ही उन्नति के साधन बतावेंगे।

आत्म-शिक्षण को पंडितों ने तीन प्रधान भागों में विभक्त किया है-अर्थात् दैहिक, धार्मिक और मानसिक।

इन तीनों का वर्णन इस लेख में यथास्थान मिलेगा, किन्तु आपस में मिले रहने के कारण धार्मिक और मानसिक विषय यहाँ कुछ मिले हुए कहे जायेंगे, यद्यपि इनका पृथककरण भी सम्भव है। पहले हम मनुष्य जीवन के साफल्य का कथन करेंगे और फिर शारीरिक शिक्षण कहने के लिये स्वास्थ्य का वर्णन होगा। यहाँ तक तीसरा अध्याय समाप्त होता है। अनन्तर तीन अध्यायों में एक-एक करके कुटुम्ब, मित्रता और संग का कथन किया जायेगा। इन तीनों से शिक्षण में बड़ा सहारा मिलता है और जो पुरुष इनके व्यवहारों में दक्ष होगा, वह एक प्रकार से पंडित हो जायगा। इसीलिये आगे के अध्याय में अध्ययन का ही कथन होगा और तब आठवें तथा नवें अध्यायों में स्वतंत्रता एवं कर्तव्य और आज्ञापालन सम्बन्धी शिक्षाएँ

दी जायेंगी। अनन्तर चार अध्यायों में आचार, वीरता, न्याय, दया और क्रोध के वर्णन होंगे और तब अन्तिम चौदहवें तथा पन्द्रहवें अध्यायों में आत्म-शिक्षण का गौरव स्वरूप सत्य एवं संसार की सारता आवेगी। आत्म-शिक्षण में उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त अनेकानेक ऐसे गहन विषय हैं जिनको पृथक् अध्याय मिलना अनुचित नहीं था, किन्तु स्थानाभाव से थोड़े ही में बहुत कुछ कहने का यहाँ प्रयत्न किया गया है। उद्योग, सामयिक तत्परता, ब्रह्मचर्य, व्यभिचाराभाव, मितव्यय आदि अनेकानेक जिन गहन विषयों को यहां स्वतंत्र अध्याय नहीं मिल सके हैं उनका वर्णन यथास्थान अन्य उचित विषयों के अन्तर्गत कर दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य धनी, महान अथवा बुद्धिमान नहीं हो सकता है, किन्तु सदाचारी हो सकता है और उसे ऐसा होना भी चाहिए। यदि विचार किया जाय तो वास्तविक सुख भी जितना सदाचारी को मिलता है, उतना धनी आदि किसी को नहीं मिलता।

कहते हैं कि जब सिंकदर भारत में आया और अपनी विजय-यात्रा में निकला तो एक फकीर उसका कुछ भी सत्कार अथवा सम्मान किए बिना जैसा का तैसा बैठा रहा। सिकन्दर को बड़ा आश्चर्य हुआ, यहाँ तक कि उसके पास जाकर उसने पूछा कि तूने मेरी जरा भी इज्जत क्यों नहीं की? क्या तू अपने को मुझ प्रतापी राजा से भी बड़ा समझता है? उत्तर मिला कि इसमें सन्देह ही क्या है, क्योंकि तू यदि राजा है तो मैं महाराज हूँ। जब पूछा गया कि तेरा राज्य, कोष और सेना कहाँ है तब उसने उत्तर दिया कि यह सारा संसार मेरा राज्य है, और कोष तथा सेना की मुझे इसलिये आवश्यकता नहीं है कि मेरे व्यय और शत्रु हैं ही नहीं। इसी प्रकार कहते हैं कि एक प्रतापी राजा अपने महल में जिस समय रात्रि में निद्रा के अभाव से अपने मोटे कालीन की सेज पर करवटें बदल रहा था, तभी खिड़की के सामने उसने केवल भूमि पर वरन कंकड़ों की शैया पर एक फकीर को सोते देखा। प्रातःकाल राजा ने भिक्षुक को बुलाकर प्रश्न किया कि, "बाबाजी! रात कैसी कटी? उत्तर मिला कि कुछ तेरे समान और कुछ तुझसे अच्छी।

राजा के चकित होने पर महात्मा ने कहा कि सोते में मेरा तेरा सुख समान था क्योंकि न तुझको अपनी सुखद सेज का ज्ञान था और न मुझे कंकड़ों का, किन्तु जागते में मैं तुझसे अच्छा रहा, क्योंकि मुझे तो केवल कंकड़ों का कष्ट था, जो अभ्यास के कारण बहुत स्वल्प हो गया है, किन्तु तुझे हजारों प्रकार की विकट चिताएँ अपना शिकार बना रही थीं, जिससे तुझे निद्रा-प्राप्ति तक दुस्तर थी। यदि सोचा जाय तो ये कथन सब अक्षरशः यथार्थ हैं। किन्तु अदृढ़-चित्त मनुष्य इनको चामत्कारिक कथन मात्र कहकर भूल जाते हैं। जिन लोगों का स्वभाव उनके आचरणों में प्रकट न हो, समझ लेना चाहिए कि उनका वह स्वभाव ही नहीं है।

स्वभाव की संसार में उचित ही पूजा होती है। बिना इसके अन्य गुणों से युक्त होकर भी मनुष्य सदैव ज्ञाताओं द्वारा घृणा की दृष्टि से देखा जायगा। संसार में बुद्धि की महत्ता सर्वमान्य है, किन्तु पूजा सुस्वभाव ही की होती है। सैकड़ों ऐसे मनुष्य अपनी पार्थिव प्रभुता से महान समझे जाते हैं कि जिनको कर्मों के विचार से वास्तव में नीचाति नीच समझना चाहिए। यह अवश्य मान्य है कि संसार में पूर्ण पूजन प्रत्येक सुस्वभावयुक्त व्यक्ति का नहीं होता, किन्तु ऐसा प्रत्येक व्यक्ति पूज्य है अवश्य। सबको बड़े होने का अवसर प्राप्त नहीं होता, किन्तु सदाचारी मनुष्य का, जहाँ तक ज्ञात होता है, वहाँ तक वास्तविक पूजन अवश्य होता है। इसलिये सदाचार पर पूर्ण ध्यान देना योग्य है। ❀❀❀

क्रोध पर विजय

लेखकः स्वामी सोमानन्द महाराज

क्षमया क्रोधमुच्छिन्द्यात् कामं संकल्पवर्जनात्।

न द्विषन्तं क्षयं यान्ति यावज्जीवमपि घ्नतः। क्रोधमेव तु यो हन्यात् तस्य सर्वे द्विषो हताः।।

बात बहुत वर्ष पहले की है-रिवाड़ी में एक सज्जन होते थे-लाला रामानन्द! वे महाराज के एक श्रद्धालु भक्त थे और प्रायः महाराज के चरणों में सत्संग के लिए उपस्थित होते रहते थे। उन्होंने महाराज से क्रोध पर विजय पाने का उपाय पूछा। महाराज ने उनको 6-7 बातें बतलाईं। पर एक बात ने उनको सबसे अधिक प्रभावित किया। वे अपने परीक्षण में सफल रहे। इसलिए प्रसन्न मुद्रा में अपनी दुकान बन्द करके वैदिक आश्रम रिवाड़ी में महाराज के पास पहुँचे और कहने लगे-स्वामीजी! आपक द्वारा बतलाई गई एक बात ने तो मेरा उद्धार ही कर दिया कि **"तुम भगवान् से उनका प्रेमी भक्त बनकर प्रतिदिन यह प्रार्थना किया करो कि हे भगवान्! मुझे शक्ति व सुमति दो। मैं सदा इस बात का ध्यान रखूँ कि दिन भर व्यवहार करते हुए कोई व्यक्ति मुझ पर क्रोध करे तो यही समझूँ कि वह आपका भेजा हुआ मेरी परीक्षा लेने के लिए मेरे पास आया है।"**

क्रोध के मूल को यदि खोजा जाए तो उत्तर मिलेगा-कामना (**कामात् क्रोधोऽभिजायते**), और वह कामना अपना विशिष्ट आग्रह लिये हुए दो रूपों में व्यक्ति के समक्ष उपस्थित होती है-'ऐसा होना चाहिए', 'ऐसा नहीं होना चाहिए।' यदि इस आग्रह में व्यक्तिक्रम होता है, तो अवश्य ही क्रोध भी उत्पन्न होगा। सो किसी व्यक्ति को यदि तीव्र इच्छा जागरित हो गयी है कि मैं क्रोध न करूँ अर्थात् सर्वदा शान्त रहूँ, तो उसे अपने 'उपरि निर्दिष्ट आग्रह' के प्रति सचेत होना होगा। व्यक्ति प्रायः जीवन को सुखमय बनाना तो चाहता है, उसके लिए यथाशक्ति प्रयत्न भी करता है, पर उसकी मूल समस्या यह है कि यह शुभ स्मृति या शुभ संकल्प मौके पर गायब हो जाता है। जब घटना घट चुकी होती है, तब याद आता है-यह क्या हुआ?

महापुरुष और सामान्य व्यक्ति के जीवन में ध्यान से देखा जाए तो यही अन्तर दिखाई देगा कि **महापुरुष घटना के घटित होने से पहले सावधान हो जाते हैं और सामान्य व्यक्ति उस समय सावधान होता है 'जब चिड़िया चुग गयी खेत'।** सो किसी संकल्प को अभ्यास में लाने के लिए किसी अन्य एक संकल्प के साथ उसे जोड़ दिया जाए या अन्य किसी एक आलम्बन अथवा घटना का सहारा लेकर यदि उसे स्मृति-पटल पर रखा जाए तो उस संकल्प को स्मरण रखने में व्यक्ति को पर्याप्त सहयोग मिल सकता है। जैसे 'मैं सब परिस्थितियों में शान्त रहना चाहता हूँ', इस संकल्प को पूरा करने के लिए इसे अपने किसी गुरुजी के साथ जोड़ दिया जाए कि पूज्य गुरुजी का मेरे लिए ऐसा आदेश है और यह मुझे ध्यान में रखना है।

श्री महाराज के द्वारा सुझाया उपाय भी इसी रूप में सहयोगी है कि प्रतिदिन प्रातःकाल मैं स्वयं ही हृदय से भगवान् के सामने प्रार्थना कर रहा हूँ कि हे भगवान्! आज मेरी परीक्षा के लिए किसी ऐसे व्यक्ति

को भेजिए कि वह मुझ पर क्रोध करे और मैं सदा याद रख सकूँ कि वह आपका ही भेजा हुआ मेरे पास आया है। सो जब किसी क्रोधी व्यक्ति का आगमन होगा, उस समय मन उसको सहज रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार रहेगा, अन्दर विद्रोह का वायुमण्डल नहीं बनेगा। प्राप्त परिस्थिति को स्वीकार न करने का नाम ही तो क्रोध है। यदि जो भी है–अनुकूल या प्रतिकूल, इच्छित या अनिच्छित, उसे सहज स्वीकृति दे दी जाती है, तो फिर कैसा क्रोध? इस प्रकार महाराज के द्वारा निर्दिष्ट उपाय, क्रोध पर विजय पाने के लिए सर्वथा वैज्ञानिक है, तर्कसंगत है।

एक बात का तो अवश्य ही ध्यान रखना होगा। चाहे क्रोध है या कोई अन्य उसका भाई–बन्धु, यदि उसको हम नहीं चाहते हैं तो सर्वथा एक तरफ होना होगा। प्रायः व्यक्ति उस चीज को नहीं भी चाहता रहता है और एकदम से छोड़ना भी नहीं चाहता, अर्थात् उससे कुछ रस भी लेना चाहता है, उसकी आवश्यकता भी अनुभव करता रहता। इसलिए उसके समर्थन में कुछ तर्क भी देता रहता है कि क्रोध करना सर्वथा त्याग दिया तो बहुत हानि हो जायेगी, बच्चे बिगड़ जायेंगे, कुछ तो करना ही पड़ेगा। यदि ऐसी मानसिकता बनी हुई है तो विजय कठिन ही है।

जब किसी भी चीज की पूर्ण रूप से व्यर्थता समझ ली जाती है, किंचित भी किसी स्तर पर लाभ नहीं दिखाई देता, तो निश्चित ही उस चीज को त्यागने में बहुत सरलता हो जाती है। हो सकता है शरीर व मन के कुछ पुराने अभ्यास कुछ सीमा तक पीछा करें, पर वे दूर तक साथ नहीं चल पायेंगे।

किसी बात की व्यर्थता को पूर्ण रूप से समझने का अर्थ यह है जैसे काले सर्प को काला सर्प समझा जाता है, एक हजार फिट गहरी खाई को एक गहरी खाई के रूप में समझा जाता है, अग्नि की दाहकता को बिना भ्रम के समझ लिया जाता है कि यह तुरन्त जला देती है। यदि उसकी व्यर्थता का इतना स्पष्ट चित्र नहीं बन पा रहा है तो समस्या पर विजय पाना अवश्य ही कठिन होगा। 'रस आना', 'किंचित् भी रस न आना, किन्तु पीड़ा भी महसूस न होना' और 'पीड़ा दिखाई देना'–इन तीन स्थितियों में जब तक पीड़ा नहीं दिखाई देती, तब तक जीवन के लिए कितनी भी घातक चीज हो उससे ऊपर उठ पाना कठिन ही है, और जब वह व्यक्ति के स्वभाव का अङ्ग बनी हुई हो, तब तो और भी ज्यादा कठिन है।

इसलिए अभ्यस्त मन को नई दिशा देने के लिए अनेक प्रकार से उपायों का सहारा लेना आवश्यक है। सारी बात व्यक्ति की चाहत पर आकर टिक जाती है। वह क्या चाहता है, जो चाहता है वही मिलता है। क्रोध चाहता है तो क्रोध, शान्ति चाहता है तो शान्ति। मिलता है आचरित कर्म के आधार पर। देखिए एकनाथ महाराज ने एक देवी के क्रोध को कैसे शान्त किया? सन्त महात्माओं का जीवन, उनका व्यवहार, उनकी वाणी, उनकी कर्म–पद्धति, सब कुछ अद्‌भुत होता है। ऐसा ही सन्त एकनाथ महाराज की इस निम्नलिखित घटना में देखने को मिलता है–

एकनाथ महाराज, जो महाराष्ट्र के एक प्रसिद्ध सन्त हुए हैं, एक गाँव में भिक्षा के लिए गये। एक घर के समक्ष खड़े होकर आवाज लगायी–माई! भिक्षा। घर में जो देवी उपस्थित थी, वह बहुत क्रोधी स्वभाव की थी। सन्त जी के बहुत प्रतीक्षा करने के बाद हाथ में एक मुट्ठी बाजरा लिये हुए निकलकर बाहर आयी। सन्त जी के पास आकर क्रोध अवस्था में ही कहने लगी–'ले जल्दी से'! सन्त जी ने जैसे ही झोली फैलायी तो देवी जी के द्वारा सन्तजी की ओर फेंका हुआ बाजरा झोली में न पहुँचकर नीचे गिर पड़ा। अब सन्तजी प्रसन्नता के

साथ, वहीं नीचे बैठकर बाजरे का एक-एक दाना चुगकर खाने लगे।

स्पष्ट है उन सब दानों को चुगने में सन्तजी को कितना परिश्रम करना पड़ा होगा, कितना समय उन्होंने उसमें लगाया होगा-अनुमान किया जा सकता है। सन्तजी के इस व्यवहार को देखकर देवी जी का सब-का-सब क्रोध हवा हो गया। वह बहुत विनम्र और मधुर स्वर में कहने लगी-कोई बात नहीं, महाराज जी, मैं और ला देती हूँ, आप इसे यहाँ नीचे ही पड़ा रहने दीजिए। सन्तजी ने भी बड़े प्रेम से कहा-नहीं माता! आप तो भिक्षा दे चुकी हैं। मेरा नियम है एक ही दिन एक घर से दो बार भिक्षा नहीं लेता। अब तो यही पर्याप्त रहेगा। देवी जी को सन्तजी के साथ किये गए अपने व्यवहार पर बहुत खेद व पश्चात्ताप हुआ। इस प्रकार सन्त ने अपनी सहनशीलता से हृदय-परिवर्तन जैसा दुष्कर कार्य कर दिखाया।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसे प्रसंग लगभग प्रतिदिन ही आते रहते हैं। स्थिति को समस्या बनाकर यदि व्यक्ति न देखे, तो स्थिति से बहुत आसानी के साथ निपटा जा सकता है। पर व्यक्ति प्रायः प्रमाद में जीता है और स्थिति को समस्या समझने की भूल कर बैठता है। **स्थिति और समस्या का प्रत्युत्तर कभी भी एक नहीं हुआ करता। जब व्यक्ति के समक्ष कोई 'स्थित' होती है, तो व्यक्ति का मन पूर्ण शान्त होता है, उसको देखकर विचलित नहीं होता, पर जब किसी चीज को 'समस्या' के रूप में देखता है, तो उस समय मन की अवस्था अलग प्रकार की हो जाती है। धैर्य भी साथ छोड़ देता है। अतः व्यक्ति असहनशील हो जाता है।**

घटना का जो भी रूप सामने है, दूसरा व्यक्ति भी उसी स्तर पर पहुँच सकता है। एक व्यक्ति के मुख से अपशब्द निकल रहे हैं तो सुनने वाला भी उन्हीं शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ कर सकता है। एक ने हाथ उठा लिया तो उत्तर में दूसरा भी वही कर सकता है। इसलिए बेशक समस्या ही हो, पर उसका नामकरण 'स्थिति' शब्द से यदि कर दिया जाता है तो लगभग सभी झंझट उसी समय समाप्त हो सकते हैं। सन्त एकनाथ ने ऊपर उद्धृत घटना में यही तो किया। देवी जी किसी कारण क्रोध में हैं, यह एक स्थिति है। बस! सन्तजी उसे देख रहे हैं। यदि उसे वे समस्या के रूप में देखने लगते तो स्यात् उनके मन की वह स्थिति न रहती जो अब बनी रही।

यह पूर्णतः व्यक्ति के ऊपर निर्भर करता है कि वह अपनी ज्ञान-शक्ति, अपने विवेक का प्रयोग कर हर समस्या को स्थिति में बदल दे, लेकिन यदि वह समझ के क्षेत्र में प्रमाद कर बैठता है तो उसे प्रत्येक स्थिति ही समस्या के रूप में दिखाई देगी। समस्या छोटी है या बड़ी है- सवाल इस बात का नहीं। तथ्य यह है, हमारे देखने का स्तर क्या है? हमारी दृष्टि कैसी है? इस बात पर ही सब कुछ निर्भर करता है। जीवन में जो व्यक्ति बड़ी-से-बड़ी घटना को भी शान्त होकर स्थिति के रूप में देख सकता है, वही सन्त एकनाथ जी की तरह शान्त जीवन जीता हुआ औरों को भी शान्ति का दान कर सकता है। यही कहानी का सार है। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 25 का शेष-

जायगा और असुख आनन्द में परिणत हो जायगा।

तुम अपने प्रत्येक क्षण को पवित्र और उपयोगी बनाने का उद्योग करो। प्रत्येक कार्य और कर्त्तव्य को अनुराग और निःस्वार्थता से करो। प्रत्येक विचार, वचन और कार्य को मधुर और सत्य बनाओ। इस प्रकार तुम अपने जीवन की तुच्छ से तुच्छतम बातों की अतुल्य महत्ता को अभ्यास और अनुभव से सीखो और अत्यन्त तथा अनन्त आनन्द को प्राप्त करो। ❁❁❁

बनके बिलखती मानवता का परित्राण करेंगे।

इस अवसर पर वैदिक आश्रम व्यवस्था का पालन करते हुये अपने जीवन को श्रेयपथ का पथिक बनाने के लिये सरकारी सेवानिवृत्त श्री गोविन्ददेव आर्य व डॉ0 गिरिराज आर्य ने वानप्रस्थ आश्रम की दीक्षा ली। और सबके सामने संकल्प व्यक्त किया कि अब हम अपना सारा जीवन माया-मोह से दूर ईश्वर की उपासना में लगायेंगे और अपना सारा जीवन महर्षि दयानन्द के निर्देशानुसार परोपकार के कार्य करने में व्यतीत करेंगे। उनके इन भावों को उपस्थित जनसमुदाय ने सहर्ष करतल ध्वनि के साथ स्वागत किया। इस अवसर पर महाशय अमीचन्द के नेतृत्व में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने संगीत के माध्यम से महर्षि दयानन्द की महिमा और ईश्वर भक्ति के गीत प्रस्तुत किये। महाशय देवीसिंह अकबरपुर-मथुरा, महाशय उदयवीर उसपार-मथुरा, पण्डित कमलदेव जी महारामगढ़ी-मथुरा ने इस अवसर पर अपने भजनों व प्रवचनों के माध्यम से जनता के मनों में उदात्त भावना का संचार किया। मथुरा तथा समीपस्थ जनपदों आगरा, फिरोजाबाद, मैनपुरी, इटावा, कन्नौज, शाहजहाँपुर, बदायूँ, अलीगढ़, बुलन्दशहर, गाजियाबाद, कासगंज, एटा, हाथरस आदि जनपदों से भी उपस्थिति उल्लेखनीय रही। समीपस्थ प्रान्तों दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि से भी लोगों ने उपस्थित होकर कार्यक्रम की गरिमा को बढ़ाया। श्री विरजानन्द ट्रस्ट के सभी पदाधिकारी, जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा मथुरा व जिले के समस्त आर्यसमाज के पदाधिकारियों ने अपना सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इसके लिये सभी के प्रति हार्दिक कृतघ्नता व धन्यवाद ज्ञापित किया गया।

ध्यातव्य विषय यह है कि सर्वोपकारी संस्था आर्यसमाज के बिना प्राणी मात्र का कल्याण होना सम्भव नहीं है। क्योंकि यह संस्था वैदिक संस्कृति की सम्पोषक है। जो संस्कृति ईश्वर द्वारा प्रदत्त वेद ज्ञान पर आधारित है। और सारे संसार के लिये समान रूप से हितकारिणी है। ऐसी संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना व्यक्ति के लिये परम सौभाग्य की बात है। तपोभूमि पत्रिका, गौशाला, गुरुकुल, गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन आदि का सुव्यवस्थित संचालन कार्य निरन्तर करते रहना एक व्यक्ति के वश की बात नहीं है। सामाजिक कार्य बिना समाज की सहायता के कभी सम्पन्न नहीं हो सकते। इस बात को ध्यान में रखकर अपने प्रबुद्ध पाठकों से निवेदन है कि अपना सर्वात्मना सहयोग देकर संस्था के समस्त प्रकल्पों को सम्बल प्रदान करें। अपने राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में सहभागी बनकर इस मानव जीवन को धन्य करें। आप सब विज्ञ हैं पाखण्ड में अन्धे लोग अकूत धन देकर उसको प्रचारित करके संसार की हानि करते हैं। आप लोग अपनी पवित्र कमाई सत्य के स्थापना में लगाकर संसार का परमहित अवश्य करें।

तन से सेवा कीजिए, मन से भलो विचार।
धन से या संसार में, करिये पर-उपकार।।

❋❋❋

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)		भ्रान्ति दर्शन	20.00
शंकर सर्वस्व	120.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	महिला गीतांजलि	10.00
नारी सर्वस्व	60.00	क्या भूत होते हैं	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)		महाभारत के कृष्ण	8.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
विदुर नीति	40.00	सच्चे गुच्छे	8.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यसमाज और श्रीराम	6.00
वेद प्रभा	30.00	आचार्य श्रीराम शर्मा : एक सरल चिन्तन	5.00
शान्ति कथा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
नित्य कर्म विधि	30.00	गायत्री गौरव	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश (प्रेस में)		सफल व्यक्तित्व	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
दो मित्रों की बातें	25.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
सुमंगली (प्रेस में)		आदर्श पत्नी	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2015 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मो. 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित